स्थापना वर्ष:१९४२

नूतन निष्काम पत्रिका

नूतन निष्काम पत्रिका ❑ वर्ष-४ ❑ अंक-५ ❑ मुम्बई ❑ मई - २०१३ ❑ मूल्य-रु.९/-

नवसंवतसर पर्व के प्रेणेता "आर्य समाज"

पुरुषोत्तमदास

प्रकृति पदत्त नवपल्लवित नवपुष्पित, सुरभित, शस्य-श्यामला, वसन्त ऋतु के स्वागतार्थ नवसंवत्सर चैत्र कृष्णपक्ष की तरह महर्षि जी के द्वारा पालितपोषित आर्य्यावत के चहुंमुखी विकास की सुखदबेला में हम सब देशवासियों की ओर से आर्यसमाज को शतशत् नमन प्रणाम् ।

महर्षि देव दयानन्द जी महाराज द्वारा नव संवतसर के पुनीत अवसर चैत्र कृष्णपक्ष प्रतिपदा को गिरगांव मुम्बई में १८७५ ई. में स्थापित संसार का प्रथम आर्य समाज जो सत्य पर ही आधारित सनातन वैदिक धर्म की नीव का पत्थर साबित होकर, भारत को स्वर्णिम क्षितिज पर आज पहुंचाने का प्रयास निरंतर करता आ रहा है। इस अटल सत्य को प्रतिपादित करवाने का सारा श्रेय महान ग्रंथ "सत्यार्थप्रकाश रुपी स्तंम्भ" के रुप में देकर करोडों देशवासियों को भोगवादि अप-संस्कृति के विकृत स्वरुप से निजात दिलाकर शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक रुढ़ीवादि धार्मिक अंदोलन को आगे बढ़ाता, सारा जगत जिसका गुणगान करता हुआ प्रतीत हुआ, क्या यह ध्रुव सत्य नहीं है ?

महर्षि जी स्वयं गुजराती भाषी होते हुये इस महान ग्रंथ "सत्यार्थप्रकाश" को जनजन की भाषा में रचा, "हिंदी" को अपनाकर उस समय हिन्दी की अनुपम सेवा कर, भारतीय जन समुदायों में हिन्दी के माध्यम से नवक्रांति का अलख जगा दिया इस नवजागरण के संदेशवाहक सत्यार्थप्रकाश के द्वारा धार्मिक सुधारवादी आंदोलन के कारण देश में नब्बे प्रतिशत स्वतंत्रता आंदोलन के क्रान्तिकारी स्वतंत्रता सेनानी बनते रहे और १५ अगस्त १९४७ को देश अंग्रेजों की दासता से मुक्त हुआ।

नवसंवतसर की पूर्व संध्या पर आज की परिस्थापित व वस्तुस्थति का अध्ययन करने से ज्ञान हो रहा है कि सामाजिक सुधारात्मक आर्यसमाज के सिद्धान्तों को जो त्याग, तपस्या, परहित, यज्ञभावना, देशहित स्वाध्याय, ज्ञान, तप व सत्य पर आधारित नींव पर बनाये गये इस विशाल भवन को कहीं भोगवादि अप-संस्कृति आज विलुप्त न कर दें, ?

विदित हो नई दिशा निर्देशानात्मक आध्यात्मिक और अति-रुढ़ीवादी विचारकों की समझ को बदलवाने का जो श्रेय (Wheel & Axil) बनकर उभरा है वह "आर्य समाज" सत्यार्थप्रकाश की देन जो सत्य पर आधारित समीक्षात्मक विश्लेषण से प्रेरत हो पौराणिक परिवेष में जीवन की धाराओं को मोढ़ने में सफल रहा है ।

हम लगभग सात सौ वर्षों की मुगल सल्तनत व ढ़ाई सौ वर्षो की आंग्ल सभ्यता का कलुषित दुष्प्रभाव और आर्य्यावृत के निवासियों की निष्क्रियता, आलस्यता और घोर अशिक्षापूर्ण दरिद्रता के मकड़जाल, स्वरुप असत्य आस्थाओं, अंधपंरपराओं, अंधविश्वासों से घिरे और निरंतर अधोगति अवनति के पथ पर चल रहे थे। परिणामस्वरुप हम गुलामों के भी गुलाम बने रहे एतिहास साक्षी है।

देश और समाज को जगाने वाला वह सिर्फ एक ही लंगोटधारी महायोगी जो कई हजारों साल बाद संयासी बनकर आया जो जगह जगह **"त्रयोधर्म स्कन्ध:"** धर्मरुपी तीन स्तम्भ **यज्ञ, विद्याअध्ययन** और **दान** की महत्त्वता को प्रतिपादित कर कर संसार की उन्नति में ही अपनी उन्नति समझकर आगे बढ़े। इस अमर ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश की रचना कर हमारा कल्याण किया। इस ग्रंथकार ने गहन विश्लेषणात्मक समिक्षा द्वारा अंधकार से प्रकाश की ओर चलाने की दिशा प्रदान की। इसमें अन्य धर्मावलंबियों द्वारा समीक्षात्मक, तत्थात्मक सत्य सनातन मापदण्डों पर सटीक प्रश्नोत्तरों द्वारा लगभग ढाई हजार ग्रंथों की टिप्पणियों के द्वारा यह बृहत् रुप में हिन्दी में प्रकाशित संसार का अद्वितीय ग्रंथ प्रमाणित हुआ है।

इस भोगवादी अप संस्कृति की उपज स्वरुप युग में बहुत काल के उपरान्त कोई सन्त, धर्मात्मा आया जो सबकी उन्नति में अपनी उन्नति को परिभाषित करने कराने के कठिन दौर की सफलता के सौपान तक पहुंचाने में सफल हुआ, चाहे उन्हें अनेकों बार कष्टदायक जहर के से घूंट पी पीकर जनता के क्रोध का शिकार होते रहे लेकिन कभी हथियार नहीं डाले। **"कारवाँ बढ़ता रहा लोग जुडते गये"** महर्षि जी के अनुयायीयों के द्वारा आर्य्यसमाजी राष्ट्र की अनुपम सेवा करते रहे हैं जो प्रमाणित सत्य सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रहा है। कृतज्ञ आर्यसमाज इन्हें श्रद्धा से नमन कर राष्ट्रसेवा की कठिन डगर में चलने का प्रयास प्रयत्न करता हुआ पूर्ण सफल बने वही कामना प्रत्येक आर्य्य प्रेमी करता रहेगा । इति

एस-८-बी, कबीर मार्ग.
बनी पार्क, जयपुर-३०२०१६.

आर्य समाज सांताक्रुज, मुम्बई का मासिक मुखपत्र

वर्ष : ४ अंक ५ (मई-२०१३)

- दयानंदाब्द : १९०, विक्रम सम्वत् : २०७०
- सृष्टि सम्वत् : १,९६,०८,५३,११४

प्रबन्ध संपादक : चन्द्रगुप्त आर्य

संपादक : संगीत आर्य

सह संपादक : संदीप आर्य

कार्यकारी संपादक : विनोद कुमार शास्त्री
लालचन्द आर्य, रमेश सिंह आर्य,
यशबाला गुप्ता.

विज्ञापन की दरें : शुल्क

- पूरा पृष्ठ : रु. ३,०००/-
- एक प्रति : रु. ९/-
- १/२ पृष्ठ : रु. २,०००/-
- वार्षिक : रु. १००/-
- १/४ पृष्ठ : रु. १,५००/-
- आजीवन : रु. १०००/-
- विशेषांक की दरें भिन्न होंगी ।

वर्गीकृत विज्ञापन

रु. १०/- प्रति शब्द, न्यूनतम रु. ५००/-

चैक /डीडी / मनी आर्डर आदि 'आर्य समाज सान्ताक्रुज' के नाम से ही भेजें, मुंबई के बाहर के चैक न भेजे। विज्ञापन सामग्री १० तारीख तक भेजें। 'नूतन निष्काम पत्रिका' का मुद्रण ऑफसेट विधि से होता है।

पत्ता : आर्य समाज सांतक्रुज़

(विठ्ठलभाई पटेल मार्ग) लिंकिंग रोड, सांताक्रुज़ (प.), मुंबई -५४ फोन : २६६० २८००, २६०० २०७५

अनुक्रमणिका	पृष्ठ सं.
सम्पादकीय	३
नवसंवतसर पर्व के प्रेणेता	२
सच्चा आस्तिक कौन?	४
नमस्ते कहाँ से चली?	५
स्वास्थ्य चर्चा	६
गुरुजनों की आज्ञा व आशिर्वाद	७
प्रतिदिन प्रभु के चरणों में....	८
भ्रूण हत्या	९
दुर्जनों से दूर ही रहें, यजुर्वेद-ज्योति,	१०-११
दयानन्द और पाश्चात्य मत	१२-१३
यज्ञ और संन्यासी	१४-१५
रक्त का रंग	१६

सम्पादकीय आर्य समाज और राष्ट्र

हम बडे गर्व से घोषणा करते हैं कि सत्यार्थ प्रकाश में महर्षि दयानन्द ने सर्वप्रथम स्वराज्य (स्वराष्ट्र) की नींव रखी थी। कालान्तर में अनेकों राष्ट्रीय विभूतियों ने आजादी के आन्दोलन में भाग लिया। मूलत: महर्षि का चिन्तन विदेशी शासकों का अच्छा होते हुए भी अस्वीकार्य था। सत्यार्थ प्रकाश के आठवें समुल्लास में आपने लिखा है, **''कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मत-मतान्तर के आग्रहरहित, अपने और पराये का पक्षपातशून्य, प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है। परन्तु भिन्न-भिन्न भाषा, पृथक्-पृथक् शिक्षा, अलग व्यवहार का विरोध छुटना अति दुष्कर है। विना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है। इसलिए जो कुछ वेदादि शास्त्रों में व्यवस्था वा इतिहास लिखे हैं उसी का मान्य करना भद्रपुरूषों का काम हैं।''**

आजादी के बाद हर देशवासी ने खुशहाली का सपना देखा। औद्योगिक क्रान्ति, हरीत क्रान्ति, शिक्षा-क्रान्ति, स्त्री शिक्षा जैसे प्रत्येक क्षेत्र में देश ने तरक्की भी की। संक्षेप में देश के प्रत्येक नागरिक को अपनी प्रतिभा निखारने का सुअवसर मिला। बैंकों का राष्ट्रीकरण करके समानता लाने का प्रयास किया गया। पूंजीवाद को अनुशासित किया गया।

किन्तु शनै: शनै: हमने तरक्की के साथ भ्रष्टाचार को पनपते भी देखा। सरकारी तन्त्र के लगभग समी विभाग में अनियमितताओं की शिकायतायें दिनों दिन बढ़ती जा रही हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि देशभक्ति धीरे-धीरे स्वार्थ एवं स्व तक सीमित रह गयी हैं। आध्यात्मवाद के संतोष को छोड़कर देशवासी आधुनिकरण के नाम पर भोगवादी संस्कृति की तरफ बढ़ने लग गये हैं। विश्व के एक हिस्से का खोखला विकास हमें आकर्षित करने लगा हैं।

परिणामत: वैश्वीकरण की आड़ में पूंजीवाद देश पर हावी हो गया है। कागज पर जो राष्ट्रीय विकास हमें दिखायी दे रहा है, यह खोखला दिख पड़ता है। यह सारा विकास मुश्किल से ५/१०% भारतवासी तक ही सीमित है। उनमें से भी-१-३% इतनी अधिक पूंजी समेटते जा रहे हैं कि जिसका हिसाब नहीं । आज राष्ट्र में धन को लेकर बहुत अधिक असमानता है। वैश्वीकरण की आड़ में विदेशी कंपनियों को न्यौता देकर जमीनों के दाम अचानक कई गुना बढ़ते दिखायी दे रहे हैं। परिणामस्वरूप संपत्ति विवाद बढ़ने लगे। यह संपत्ति विवाद धार्मिक संस्थाओं में भी पसर चुका है। बुजुर्गो द्वारा दान में दी गयी संपत्ति आज हमें लालायित कर रही है। धन उगाहने की तरह-तरह की योजनाएं सामने आ रही हैं। लगभग यही स्थिति आर्य समाज की हो गयी हैं। आर्य समाज के भवनों से वेद-ज्ञान, स्वाध्याय, परोपकार की चर्चा कम, अपनी-अपनी स्वार्थपरक योजनाओं की चर्चा ज्यादा हो रही है। उसी में सारी शक्ति नष्ट हो रही है।

जिस तरह आर्य समाज के दीवानों ने राष्ट्र की आजादी एवं सामाजिक क्रान्ति करके परोपकार एवं सेवा की नींव रखी थी, आज आवश्यकता है कि आर्य समाज पुन: आत्ममंथन करके राष्ट्र की वर्तमान समस्याओं को हल करने के लिये योजनायें राष्ट्र के सामने रखे। आज चरित्र निर्माण गौण हो गया है। राष्ट्र वैश्वीकरण की चकाचौघ में भटक गया है। सिर्फ उपभोक्तावाद का पात्र बनकर कठपुतली की तरह नाच रहा है। जबकि देश का अधिकांश तबका आज भी गरीब, असहाय, दीन है। आओ ! आर्य समाज की क्रान्ति को पुनर्जीवित करें और सामाजिक असमानता को कम करने का प्रयास करें ।

- संगीत आर्य

९३२३५ ७३८९२

सच्चा आस्तिक कौन?

1. जो ईश्वर की सत्ता में पूर्ण विश्वास रखता है, ईश्वर को सच्चिदान्दस्वरूप, निराकार, सर्व शक्तिमान, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ सर्वअन्तर्यामी, सर्वेश्वर, सर्वाधार, न्यायकारी, दयालु अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, सृष्टि कर्ता, धर्ता, हर्ता और मोक्ष दाता मानता है, ऐसा मान कर उसी की उपासना करता है।
2. जो वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानता है ऐसा इसलिये नहीं कि वे आर्ष ग्रन्थ हैं अपितु इसलिये कि वेदों में समस्त जीव जन्तुओं और सम्पूर्ण सृष्टि के कल्याण को सम्मुख रख कर प्रत्येक मन्त्र रचा गया है।
3. जो वेदों और अन्य आर्ष ग्रन्थों द्वारा प्रतिपादित यम नियमों व धर्म को जीवन में धारण करने का प्रयास करता है जैसे-

(क) सत्य बोलना, सत्य की सूक्ष्म गति को समझते हुए लोक हित में जैसा शास्त्राज्ञा अनुसार करना उचित हो वैसा करना।

(ख) पक्षपात रहित न्याय धर्म को अपनाना किसी प्रकार के भी स्वार्थ के प्रलोभन में न्याय पक्ष नहीं छोड़ना।

(ग) निषिद्ध कर्म न करना यथा झूठ बोलना, चोरी करना, पक्षपात करना, आवश्यकता से अधिक संग्रह करना।

(घ) सभी प्रकार के द्वन्दों से मुक्त रहना यथा राग-द्वेष, यश-अपयश, हानि-लाभ आदि से मन को व्याकुल नहीं करना।

3. जो जीव उत्पीड़न एवं हत्या से बचता है, आहार-व्यवहार स्वच्छ रखता है, पञ्च महायज्ञों को प्रतिदिन श्रद्धा से करता है।
4. जो मूर्ति पूजा नहीं करता। मूर्ति के सम्मुख तन-मस्तक होने का अर्थ है कि केवल वहीं पर उस पाषाण में ईश्वर है अन्यत्र नहीं। ध्यान में ईश्वर को हर समय रखते हुए उस की प्रजा के साथ सद्-व्यवहार करता है और अपना आचरण शुद्ध रखना ही प्रभु पूजा मानता है। मूर्ति पूजकों से कलह नहीं करता, उनकी निन्दा नहीं करता, उनसे प्रेमपूर्वक वार्तालाप करता है। क्योंकि जिस भी उद्देश्य से वह निराकार परमेश्वर की उपासना करता है, उद्देश्य उन का भी वही है परन्तु वे भ्रमित होकर भटके हुए हैं। प्रभु से उनकी सदबुद्धि के लिए प्रार्थना करता है।
5. जो मानता है कि सब सुख प्रभु कृपा से मिल रहे हैं उसका सुखों पर कोई अधिकार नहीं हैं इसलिये अभिमान नहीं करता, दु:ख किसी पूर्व पाप-कर्म के फल के रूप में आये हैं यह मान कर धीरज से सह लेता है, दु:खों के लिये ईश्वर या किसी अन्य को कोसता नहीं, यह आशा भी नहीं छोड़ता कि प्रभु कृपा से दु:ख के बादल छट जायेंगे और सुख का सूर्य उदय होगा।
6. जो मानता है कि परमेश्वर ने बिना किसी स्वार्थ के अपनी प्रजा के सुख के लिये सारी सृष्टि के पदार्थ दान में दे दिये हैं, सूर्य अविरल ताप और प्रकाश बांट कर जड़-चेतन पर उपकार करता है, झरने, नदियाँ अपना धरती और इसके प्राणियों को उपलब्ध कराते हैं, फूल अपनी सुगन्धि से सबको लुभाते हैं। यह सब देखकर तथा सामर्थ्य कुछ देने की प्रवृति बनाये रखने में आत्म कल्याण मानता है, अपना जीवन संतोष से काटता है, कोई महत्त्वाकांक्षा उसे विचलित नहीं करती, अभाव उसे विक्षिप्त नहीं करता। (गोधन, गजधन, बाजिधन, सब रतनधन की खान। जब आवे संतोष धन, सब धन धूलि समान।।)
7. जिसकी स्वाध्याय में रुचि है, आर्ष ग्रन्थों के स्वाध्याय में जिसका मन लगता है, अच्छा ग्रन्थ पढ़ कर और उस पर मनन-चिन्तन करने पर जिसे आत्मिक तुष्टि मिलती है और उस से परमेश्वर के सानिध्य का अनुभव होता है।
8. जो मानता है कि अद्वैतवाद और त्रैतवाद के तर्क-वितर्क और विवाद तो विद्वानों के मस्तिष्क का व्यायाम हैं, इससे आस्तिकता का कुछ विशेष सम्बन्ध नहीं है। परमेश्वर अपनी प्रजा पर बिना पक्षपात के न्याय पूर्वक उपकार करता है ऐसे ही वह भी यथा सम्भव करता है और उसे सबसे बड़ी परमेश्वर की उपासना मानता है। सत्यासत्य के निर्णय में अपनी आत्मा की साक्षी लेता है, सदैव सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करने में दुराग्रह और हठधर्मी को आड़े नहीं आने देता।
9. जो बुरी संगत से दूर रहता है और अच्छी संगत अर्थात् सत्-संग का लाभ उठाने में सब काम छोड़ कर समय निकाल लेता है। महा-पुरुषों के प्रवचन सुनने, उस पर मनन करने और यदि कोई शंङ्का हो तो पूछने में संकोच नहीं करता, नि:सन्देह होने पर निदिध्यासन अर्थात ध्यान मुद्रा में बैठ कर उस के हर पक्ष पर विचार करता है और फिर साक्षात्कार अर्थात् ज्ञान के स्वरूप को बुद्धि और जीवन में धारण करता है, आर्ष ग्रन्थों के अध्ययन और विद्वानों के विचारों के श्रवण मनन से बुरे विचारों और भ्रष्ट क्रर्मों से मन को दूर रखता है और सद्-कर्मों के करने की प्रेरणा औरों को देता है।
10. जो वर्ण भेद, रंग भेद, लिङ्ग भेद को नीच विचारधारा मानता है, विभिन्न मतों के अनुयायियों से विचार-विनिमय में कभी उग्र नहीं होता, पक्ष पर दृढ़ रहते हुए भी उन के पक्ष की बातों को धैर्य से सुनता और उन के अज्ञान पर विस्मित होता है, उनको सद्-मार्ग पर लाने के लिए प्रभु से प्रार्थना करता है, सभी प्राणियों के प्रति सद्भावना और दीन-दुखियों के लिये सहानुभूति रखता है और यथासम्भव उनकी सहायता करता है, दुखियों की सेवा को ईश्वर भक्ति मानता है।
11. जो जीवन में चिन्ताओं को अधिक स्थान नहीं देता, प्रभु में दृढ़ विश्वास रखता है, धैर्य रख कर विपत्तियों से जूझने के लिये पुरुषार्थ करता है और मानता है कि ''प्रभु उन्हीं की सहायता करते हैं जो अपनी सहायता आप करते हैं।''

जिस समस्या का उपाय उसे नहीं मिलता, उसे वह प्रभु पर छोड़ कर अपनी भक्ति, ध्यान और अच्छे कर्मों में लगा देता है। समस्या स्वत: प्रभु कृपा से दूर हो जाती है और परमेश्वर में उसका विश्वास और दृढ़ हो जाता है।

नमस्ते कहाँ से चली?

पं. सिद्धगोपाल विरल

कमल- मित्र, यह नमस्ते कहाँ से चली और इसका अर्थ क्या है?

विमल- सृष्टि के आदि से लेकर महाभारत पर्यन्त सब मनुष्य परसपर में नमस्ते ही करते थे। उनके पश्चात् जब अनेक मत मतान्तर और अनेक मजहब दुनियाँ में फैले, तो उन सबने अलग-2 शब्द नियत किये। किसी ने 'गुड मार्निंग' 'गुड नाइट' गुडवाई किसी ने 'अस्लाम अलैकुल' वालेकम सलाम' 'आदाब अर्ज' आदि-2 अनेक शब्द विधर्मियों और विदेशियों ने कल्पित किए। जै शिव, जै हरी, जय गोविन्द, जय राधेश्याम, जै रामजी की, कृष्णजी की, प्रणाम, जुहार आदि अनेक प्रयोग जारी किये। महाभारत के पहिले भू-मण्डल पर आर्य लोगों का अखण्ड राज्य था लोग वैदिक धर्मी थे। परस्पर में नमस्ते ही किया करते थे। अब ऋषि दयानन्द की कृपा से लोग प्राचीन वैदिक सिद्धान्त को पुन: समझने लग गये हैं और परस्पर में नमस्ते करने लगे हैं। तुमने जो यह पूछा है कि नमस्ते का क्या अर्थ है, सो नमस्ते का अर्थ है- 'मैं तुम्हारा मान्य करता हूँ, आदर करता हूँ।'

कमल- क्या वेदों में नमस्ते करना लिखा है? और जै रामजी की, जै श्री कृष्ण की करने में नुकसान ही क्या है?

विमल- वेदों में ही क्या बाल्मीकि रामायण, महाभारत, उपनिषद्, गीता आदि समस्त ग्रन्थों में नमस्ते ही लिखा हुआ मिलता है। कहीं भी जै रामजी की, जै कृष्णजी की, जय शिव की आदि-2 लिखा हुआ नहीं मिलता। राम और कृष्ण स्वयं नमस्ते करते थे, क्योंकि वे सब वैदिक-धर्मी थे। मित्र ! अगल तुमसे कोई यह पूछे कि राम और कृष्ण के उत्पन्न होने के पहिले लोग क्या करते थे तो इसका उत्तर क्या दे सकते हो? राम को उत्पन्न हुए लगभग 10 लाख वर्ष हुए और कृष्ण को उत्पन्न हुए लगभग 5 हजार वर्ष हुए। सृष्टि तो इससे पहले की है। सृष्टि को उत्पन्न हुए तो करीब-2 अरब वर्ष हुए हैं। तुमसे कह चुका हूँ यह सब साम्प्रदायिक लोगों की कल्पनायें हैं। तुम्हारा यह कहना कि जै रामजी की, जै कृष्णाजी की कहने में नुकसान क्या है? नुकसान एक नहीं अनेक हैं। प्रथम तो लोगों में साम्प्रदायिक भावना जागृत होती है। दूसरे इन प्रयोगों में परस्पर की कोई भावना नहीं। मानव समाज में तो कोई उम्र में किसी से बड़ा है, कोई उम्र में छोटा है और कोई उम्र में बराबर। जब परस्पर में एक दूसरे से मिलना हो तो एक दूसरो के प्रति आदर और सम्मान का भाव प्रकट करना मनुष्यता और सभ्यता का चिन्ह है। ऐसा न करके जै रामजी की, जय कृष्णजी की, या जय शिव की करना शोभास्पद प्रतीत नहीं होता। फर्ज करो तुम्हें अपनी नानी, मामी या बुआ, फुफा के दर्शन हुए और उस समय उन सबसे तुमने जय रामजी की' या 'जय कृष्णजी की' कहा, तो ऐसा कहने में तुमने सम्मान में क्या शब्द कहे? क्यों जय रामजी की बोलने में राम की जय और जय श्रीकृष्णजी बोलने में कृष्ण की जय हुई। उनके आदर और सम्मान में तो कुछ न हुआ। 'नमस्ते' में कृष्ण की जय हुई। उनके आदर और सम्मान में तो कुछ न हुआ। 'नमस्ते' कहने से यह बात निकली 'मैं तुम्हारा मान करता हूँ।' मैं तुम्हारा आदर करता हूँ।' आदर हर एक का करना चाहिए छोटों का छोटा जैसा, बड़ों का बड़ा जैसा। बच्चे का भी आदर है, और बड़े का भी आदर है, माता-पिता का भी आदर है, पुत्र-पुत्री का भी आदर है।

कमल- राम की जय और कृष्ण की जय बोलने में राम और कृष्ण का नाम जुबान पर आता है?

विमल- नाम तो आता है पर क्या ये जरुरी है कि एक दूसरे के सम्मान या अदब के समय भी जय रामजी की और जय कृष्णजी की कहा जाये? क्या हर समय हर एक शब्द का बोलना उचित होता है? समय पर राम की और कृष्ण की जय बोलना भी अच्छा प्रतीत हो सकता है? जहाँ राम और कृष्ण का चरित्र वर्णन किया जा रहा हो, वहाँ कंस और रावण के मुकाबले पर राम-कृष्ण की जय बोलना अत्यन्त सुन्दर और शोभायमान प्रतीत होता है।

कमल- क्या अच्छे शब्द हर समय नहीं बोले जा सकते हैं?

विमल- चाहे कितने ही सुन्दर शब्द हों, वे समय पर ही अच्छे मालूम होते हैं। देखो ! 'राम नाम सत्य है' कितना सुन्दर वाक्य है। परन्तु हर समय अच्छा मालूम नहीं होता। यदि हर समय मालूम दे तो जरा विवाह के अवसर पर इसे बोलकर देखो फिर पता चले कि यह वाक्य कितना भयंकर है। इस वाक्य के बोलने में कितनी बुराइयाँ और गालियाँ पल्ले पड़ती हैं, जरा अजमा कर कभी देखो तो सही।

कमल- क्या प्रत्येक को नमस्ते करना चाहिए? बेटा बाप को नमस्ते करे तो ठीक भी है, परन्तु बाप बेटे को नमस्ते करे, माँ बेटी को नमस्ते करे, छोटे बड़े को, बड़ा छोटे को, नीच, उँच को, उँच नीच को, भला यह क्या बात हुई?

विमल- अच्छा यह बताओ, कि एक मनुष्य को अपनी माता से प्रेम करना चाहिए या नहीं?

कमल- हाँ, करना चाहिए।

विमल- अपने भाई से भी प्रेम करना चाहिए या नहीं?

कमल- हाँ, करना चाहिए।

विमल- अपनी पुत्री से भी प्रेम करना चाहिए या नहीं?

कमल- हाँ, करना चाहिए।

विमल- अपनी पत्नी से भी प्रेम करना चाहिए या नहीं?

कमल- हाँ, करना चाहिए।

विमल- अब मैं पूछता हूँ सबसे ही प्रेम करना चाहिए, यह क्या बात हुई? माता से भी प्रेम, बहिन से भी प्रेम, पुत्री से भी प्रेम, पति से भी प्रेम, पिता, पुत्र और भाई से भी प्रेम। सबसे प्रेम ही प्रेम ! सबके लिए एक ही शब्द। भला यह कहाँ की सभ्यता है कि प्रत्येक से प्रेम करें?

कमल- पति, पुत्र, माँ, मित्र, बेटी आदि से प्रेम करने में भावनायें तो अलग-2 हैं?

विमल- इसी प्रकार नमस्ते करने की भावनायें अलग-2 हैं। जैसे माता-पिता से प्रेम करते हैं तो श्रद्धा प्रकट करते हैं, भाई-बहिन से प्रेम करते हैं तो स्नेह प्रकट करते हैं, पति से प्रेम करते समय 'प्रणय' की भावना प्रकट करते हैं, वह भगवान से प्रेम करते हैं तो भक्ति प्रकट करते हैं। इसी प्रकार माता-पिता से नमस्ते करते हैं तो आदर प्रकट करते हैं। पुत्र-पुत्री से नमस्ते करते हैं तो आशीष या आशीर्वाद देते हैं। बराबर वालों से नमस्ते करते हैं तो प्रेम प्रकट करते हैं। बड़ों का आदर, बराबर वालों से प्रेम, छोटों पर दया यह सारी भावनायें 'नमस्ते' शब्द में मौजूद हैं। परन्तु इन समस्त भावनाओं की मन्शा एक ही हैं- प्रत्येक का आदर, पत्येक का सत्कार जैसे श्रद्धा, स्नेह, प्रणय आदि शब्द प्रेम के ही दूसरे रुप हैं, इसी प्रकार आदर, आशीर्वाद प्रेम आदि भी नमस्ते के दूसरे रुप हैं।

कमल- मित्र, आपने यह शंका तो निवारण कर दी। अब यह बतलाइये कि मनुष्य को मॉस खाना चाहिए या नहीं?

विमल- इस विषय पर कल विवेचन करूँगा अब तो देर हो रही है।

पेट के रोग

1. कब्ज (वायुविकार, अजीर्ण) (Constipation)

हमारे द्वारा भोजन ग्रहण करने के बाद उसका पाचन संस्थान द्वारा पाचन होता है। मुँह में ग्रास के चबाने के साथ ही पाचन क्रिया ही शुरुआत हो जाती है। उसके बाद ग्रास नली द्वारा आमाशय में पहुँच कर भोजन के पचने की क्रिया आरंभ होती है। अगर इस प्रक्रिया में किसी भी प्रकार की रुकावट होती है, तो फिर भोजन सही ढ़ंग से नहीं पचता तथा अपच होती है और फिर कब्ज होती है। सही ढ़ंग से मल न निकलना कब्ज कहलाता है यह रोग अधिक तनाव के कारण भी होता है। देर रात तक जागने, भोजन देर से करने या ज्यादा तला भुना या चिकना भोजन करने से या किसी बिमारी के कारण भी हो सकता है। शोक, दुख, चिन्ता के कारण भी कब्ज हो जाता है। इससे पेट में गैस बनने लगती है। हवा पास नहीं होती, खट्टी डकारें आती हैं तथा जी मिचलाने लगता है। इसके घरेलु उपचार निम्न हैं।

1) अदरक की चटनी नमक मिलाकर चाटने से गैस पास होने लगती है। अदरक के रस में नींबू और पुदीने का रस मिलाकर पीने से रोग में आराम मिलता है यदि आवश्यक लगे तो एक-दो चम्मच शहद भी मिला सकते हैं।
2) सौंठ + कालीमिर्च + पीपल को बराबर मात्रा में लेकर चूर्ण बनायें। सुबह-शाम आधा-आधा चम्मच लें। कब्ज दूर होगी।
3) पके हुये बेल का शरबत पीने से या बेल के गूदे में सौंफ का पाऊडर मिलाकर पीने से कब्ज दूर होती है। पका बेल खायें तो और भी अच्छा।
4) अदरक और सुखे धनिए का काढ़ा पीने से कब्ज दूर होगा।
5) रात में दुध के साथ दो चम्मच ईसबगोल खाने से कब्ज में आराम मिलता हैं।
6) पुदीने का रस खाण्ड चीनी या गुड़ मिलाकर लें।
7) सौंठ + इलायची (बड़ी) + दाल चीनी को बराबर मात्रा में लेकर कूटकर पाउडर बना लें, सुबह शाम सादे पानी के साथ एक चम्मच लेने से कब्ज दूर होती है।
8) गरम पानी में एक नींबू मिलाकर पीने से कब्ज दूर होती है।
9) रात्रि में तांबे के पात्र में रखा पानी प्रात: शौच जाने से पहले पीने से कब्ज दूर होती है।
10) रात को गरम दूध के साथ एक चम्मच त्रिफला लेने से कब्ज दूर होगा।
11) कब्ज होने पर हीरा हींग की फाँक लेने (पानी के साथ) से भी तथा नाभि पर हींग रखने और मलने से भी कब्ज की शिकायत दूर होती है।.
12) एक गिलास पानी में एक चम्मच सौंठ उबालकर सेंधा नमक मिलायें और ठंडा होने पर पीयें। अपच में लाभ होगा।
13) दही में बारीक प्याज काटकर खाने से लाभ मिलता है।
14) कच्चे प्याज का रस पेट दर्द, बदहजमी, वायु विकार और अफरा में लाभदायक होता है।
15) अंगूर नियमित सेवन से कब्ज अपने आप ठीक होता है।
16) अदरक का किसी भी रुप में प्रयोग करते रहने से भोजन सरलता पूर्वक पचता है और कब्जियत भी दूर होती है।
17) दालचीनी के नियमित उपयोग से कब्ज दूर होता है।

कब्ज (वायुविकार, अजीर्ण) (Constipation) के लिए

छोटी हरड़	-	10 ग्राम
सौंफ	-	10 ग्राम
नौसादर	-	2.5 ग्राम
काला नमक	-	15 ग्राम
सौंठ	-	10 ग्राम

सब को मिलाकर 20 पुड़िया बनावें सुबह-शाम भोजन से आधा घन्टा पहले ताजा पानी से लेवें।

कुटजारिष्ट	- चार चम्मच सुबह चार चम्मच शाम चार चम्मच पानी में लेवें।
अभयारिष्ट	- चार चार चम्मच सुबह शाम पानी में लेवें।
पुनर्नवादिमन्डूर	- एक-एक गोली सुबह-शाम।
उदरामृत वटी	- एक-एक गोली सुबह-शाम।
चित्रकादी वटी	- एक-एक गोली सुबह-शाम

परहेज : उष्ण पेय, सरसों का तेल, मसाला, मांस मछली, आम, इमली, खटाई, आलू, चावल, दही, पापड, उड़द की दाल, बैगुन, गोभी, तला हुआ न खाये।

प्राणायाम : प्रात: खाली पेट 5 से 10 मिनट कपालभाति करने से कब्ज व पेट के रोगों मे विशेष लाभ मिलता है।

औषध-विज्ञान से साभार

गुरुजनों की आज्ञा व आशीर्वाद

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

सुना जाता है कि प्राचीन काल में जो गुरुजनों की अनुमति लिए बिना युद्ध करता था वह उन माननीय जनों की दृष्टि में गिर जाता था और जो शास्त्र की आज्ञानुसार माननीय पुरुषों की आज्ञा लेकर युद्ध करता था उसकी विजय उस युद्ध में अवश्य होती थी। इसलिए युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ तुरन्त भीष्म पितामह के पास जा पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने अपने दोनों से पितामह के चरणों को दबाया और उनसे इस प्रकार कहा- ''हे पितामह ! मुझे आपके साथ युद्ध करना है, एतदर्थ मैं आपसे आज्ञा चाहता हूँ। इसके लिए मुझे आज्ञा और अपना आशीर्वाद प्रदान करें।''

भीष्म बोले- ''यदि इस युद्ध के समय तुम इस प्रकार मेरे पास न आते तो मैं तुम्हें पराजित होने का शाप दे देता। पुत्र ! अब मैं प्रसन्न हूँ और तुम्हें आज्ञा देता हूँ। तुम युद्ध करो और विजय पाओ। इसके अतिरिक्त और भी जो तुम्हारी अभिलाषा हो, वह इस युद्धभूमि में प्राप्त करो। अर्जुन ! तुम वर माँगो, तुम मुझसे क्या चाहते हो? ऐसी स्थिति में तुम्हारी पराजय नहीं होगी। परन्तु-

अर्थस्य पुरुषो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्।
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यमेन् कौरवैः।।

''राजन् ! मनुष्य अर्थ का दास है, अर्थ किसी का दास नहीं। यह सर्वथा सत्य है। मैं कौरवों के द्वारा अर्थ से बँधा हुआ हूँ।

''आज मैं नपुंसक के समान वचन बोल रहा हूँ। धृतराष्ट्र के पुत्रों ने धन के द्वारा मेरा भरण-पोषणा किया है। इसलिए (तुम्हारे पक्ष में होकर) उनके साथ युद्ध करने के अतिरिक्त तुम क्या चाहते हो, यह बताओ।''

युधिष्ठिर बोले- ''आप युद्ध तो दुर्योधन की ओर से करें, पर मेरा हित चाहते हुए मुझे सदा मेरे हित में सलाह देते रहें। मैं यही वर चाहता हूँ। पितामह ! आप तो किसी से पराजित हो नहीं सकते, फिर मैं आपको युद्ध में कैसे जीत सकूँगा? यदि आप मेरा हित चाहते हैं तो मेरे हित की सलाह दीजिए।''

भीष्म बोले- ''ऐसा कोई वीर नहीं है जो युद्धभूमि में मुझे पराजित कर सके। साक्षात् इन्द्र ही क्यों न हो, मुझे परास्त नहीं कर सकता।''

युधिष्ठिर बोले- ''पितामह! आपको नमस्कार है। आप बार-बार आशीर्वाद देते हैं- 'विजयी भव।' पर आपके जीते-जी तो मैं जीत नहीं सकता। इसलिए अब मैं आपसे इतना ही चाहता हूँ कि आप मुझे युद्ध में शत्रुओं द्वारा अपने मारे जाने का उपाय बता दें।''

भीष्म बोले- ''बेटा ! मेरा मृत्युकाल अभी नहीं आया है, इसलिए इसका उत्तर पाने के लिए फिर कभी आना।''

तदन्तर युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ सेना के बीच से होकर गुरु द्रोणाचार्य के पास जा पहुँचे। वहाँ भी बहुत कुछ भीष्म पितामह और युधिष्ठिर के बीच हुआ संवाद दुहराया गया।

आचार्य द्रोण ने इतना विशेष कहा- ''मैं युद्ध दुर्योधन के लिए करूँगा, परन्तु जीत तुम्हारी चाहूँगा। राजन् ! तुम्हारी जीत निश्चित है, क्योंकि साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे मंत्री है। जहाँ धर्म है, वहाँ कृष्ण हैं और जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहीं विजय है। कुन्तीकुमार ! जाओ, युद्ध करो। और कहो, तुम्हें और क्या बताऊँ?''

युधिष्ठिर बोले- ''आप मेरे मनोवांछित प्रश्न को सुनिये। आप किसी से भी पराजित होने वाले नहीं हैं, तब मैं युद्ध में आपको कैसे जीत सकूँगा? इसलिए हे आचार्यप्रवर ! अब आप स्वयं अपने वध का उपाय बताइये। मैं आपके चरणों में प्रणाम करके यह पूछ रहा हूँ।''

द्रोणाचार्य बोले- ''जब मैं हथियार डाल अचेत-सा होकर आमरण अनशन के लिए बैठ जाऊँ उस अवस्था में कोई श्रेष्ठ योद्धा युद्ध में मुझे मार सकता है।

''यदि मैं किसी विश्वसनीय व्यक्ति से कोई अत्यन्त अप्रिय समाचार सुन लूँ तो मैं हथियार नीचे डाल दूँगा।''

तत्पश्चात् किंचिद् भिन्न शब्दों में कृपाचार्य के साथ भी युधिष्ठिर की यही बातें हुई।

कृपाचार्य की अनुमति प्राप्त करके युधिष्ठिर अपने मामा शल्य के पास पहुँचे और बोले- ''दुर्धर्ष वीर ! मैं पापरहित और निरपराध रहकर आपके साथ युद्ध करूँगा। इसके लिए आपकी अनुमति चाहता हूँ। आपकी अनुमति पाकर मैं समस्त शत्रुओं को युद्ध में परास्त कर सकता हूँ।''

युधिष्ठिर की बात सुनकर शल्य बोले- ''तुमने मेरी अनुमति चाहकर मेरा बड़ा सम्मान किया है, इसलिए मैं तुमसे पूर्णतया सन्तुष्ट हूँ। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ- तुम युद्ध करो और विजय प्राप्त करो। तुम मुझे कुछ और बताओ जिससे तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो। मैं तुम्हें क्या दूँ? इस परिस्थिति में, युद्ध विषयक सहयोग को छोड़कर, तुम मुझसे क्या चाहते हो?''

युधिष्ठिर बोले- ''मामा जी, जब युद्ध के लिए उद्योग चल रहा था, उन दिनों जो आपने वर दिया था, वही वर आज मेरे लिए आवश्यक है। मेरा यह विश्वास है कि सूतपुत्र कर्ण का अर्जुन के साथ युद्ध होने पर दुर्योधन आप जैसे शूरवीर को ही उसका सारथि नियुक्त करेगा। उस समय आपको उसका उत्साह भंग करना चाहिए।''

शल्य बोले- ''तुम्हारा यह अभीष्ट मनोरथ अवश्य पूर्ण होगा। जाओ, निश्चित होकर युद्ध करो। मैं तुम्हारे वचन का पालन करने की प्रतिज्ञा करता हूँ।''

इस प्रकार मामा शल्य की अनुमति पाकर युधिष्ठिर वहाँ से बाहर निकल गये।

द्रौपदी चीरहरण प्रकरण

॥ ओ३म् ॥

प्रतिदिन प्रभु के चरणों में बैठ कर उसकी प्रार्थना करें

डा. अशोक आर्य, मण्डी डबवाली

परमपिता परमात्मा की असीम कृपा से हम इस संसार में आये हैं। उस प्रभु ने हमें ज्ञान का सागर दिया है। इस में हम डुबकी लगाकर प्रतिदिन मोती चुनने का प्रयास करते रहते हैं। इस प्रभु की ही अपार कृपा से हमें अनेक प्रकार की सुख सुविधाएं प्राप्त की हैं। प्रभु ने हमें अपार धन-दौलत, सुख-शान्ति तथा बुद्धि दी है, हमारा भी कर्तव्य है कि हम प्रतिदिन उस प्रभु के समीप बैठ कर उसकी प्रार्थना करें। यजुर्वेद के अध्याय 3 मन्त्र 22 में भी यही शिहक्षा दी गयी है। मन्त्र इस प्रकार है:-

मन्त्र :-

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयं।
नमो भरन्त एमसि ।। यजुर्वेद 3.22।।

शब्दार्थ :-

(अग्ने) हे अग्नि स्वरूप परमात्मा (वयं) हम (दिवे दिवे) प्रतिदिन (दोषावस्त:) रात्री और दिन में (धिया) बुद्धि से (नाम:) नमस्ते (भरन्त:) करते हुए (त्वा) तेरे (उप) समीप (एमसि) आते हैं।

हे अग्निरुप परमपिता परमात्मा । हम प्रतिदिन प्रात: सायं अत्यंत श्रद्धा पूर्वक बुद्धि से आपको अभिवादन अर्थात नमस्ते करते हुए आपके समीप आवें।

मानव प्रतिक्षण उन्नति देखना चाहता है। वह भी कार्यशील है, उस क्षेत्र में प्रति दिन उन्नति चाहता है। वह आगे बढ़ने की अभिलाषा रखता है। वह दूसरों को अपना प्रतिद्वंद्वी समझता है तथा उसकी यह इच्छा रहती है कि वह अन्य सब लोगों से आगे निकल जावे। इस निमित उसे अत्यधिक परिश्रम की, पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है। अनेक बार केवल मेहनत, केवल पुरुषार्थ ही काम नहीं आता। असफलता की अवस्था में वह अपने आप को धिक्कारता है। उस में हीन भावना आ जाती है। इस हीन भावना के वशीभूत अनेक बार तो वह अपने आप को समाप्त तक करने की ठान लेता है। इस अवसर पर उसे आवश्यकता होती है किसी सहायक की, जो उसे संकट काल में दिलासा देकर पुन: परिश्रम की प्रेरणा दे।

आज का मानव इस बात को जानते हुए भी भूल गया है की जिस प्रभु ने हमें जन्म दिया है, वह प्रभु बड़ा महान है। उस की इच्छा के बिना तो किसी वृक्ष का पता भी नहीं हिल सकता। मानव को यह जानना होगा कि जिस प्रकार हम अपने जन्मदाता माता-पिता तथा बुद्धि के भंडार गुरुजनों के समीप बैठ कर ज्ञान को प्राप्त करते है, दिशा-निर्देश लेते हैं, ठीक उस प्रकार ही उस प्रभु के समीप बैठ कर उससे भी मार्ग-दर्शन व निर्देशन प्राप्त करें। प्रतिदिन प्रात: व सायं ईश्वर के समीप बैठकर उसकी उपासना करें। यह ही मानव की उन्नति का सर्वश्रेष्ठ साधन है। अत: जिस प्रकार माता पिता व गुरुजन के समीप बैठ कर हमें अपार आनंद मिलता है, स्नेह व ज्ञान मिलता है, ठीक उस प्रकार ही जब हम प्रभु के समीप अपना आसन लगाकर, उसके समीप बैठकर प्रतिदिन दोनों काल उसे स्मरण करेंगे तो वह प्रभु भी दयावान है। हमारे पर अवश्य ही दया करेगा, हमे अवश्य ही दिशा-निर्देश देगा। इस प्रकार उस प्रभु के समीप बैठ कर उस की उपासना पूर्वक स्तुति करने से हमारा मनोबल बढ़ेगा, आत्मिक शक्ति प्राप्त होगी, आत्मिक शक्ति मिलने से हम ज्ञान विज्ञान को बड़ी सरलता से प्राप्त करने में सफल होंगे। जब हम सब प्रकार के ज्ञान विज्ञान के अधिपति हो जावेंगे तो हमें अत्यंत हर्षोल्लास अर्थात आनंद मिलेगा।

इस संसार में आनंद का स्रोत यदि कोई है तो वह एक मात्र परमात्मा ही है। यह परमात्मा ही आनंद को देने वाला है, वह प्रभु ही सब प्रकार के ज्ञान का देने हारा है। इतना ही नहीं वह परमपिता परमात्मा ही हमें शक्ति देने वाला है। अत- अपने जीवन को सुखद बनाने के लिए, सब प्रकार की सम्पति, ज्ञान, विज्ञान, मनोबल, आत्मिक शक्ति व आनंद को पाने के लिए हमें उस प्रभु की गोदी को पाना आवश्यक हो जाता है। उस परमात्मा के समीप बैठना आवश्यक हो जाता है। परमात्मा के समीप बैठने की भी एक विधि हमारे ऋषियों ने हमें दी है। इस विधि को संध्या कहा गया है। अत: यदि हम अपने जीवन में मधुरता भरना चाहते हैं, अपने जीवन को सुखमय बनाना चाहते हैं, अपने जीवन को आनंदित रखना चाहते है, आत्मिक शक्ति से भरपूर रखना चाहते हैं तथा प्रत्येक प्रकार के ज्ञान विज्ञान के स्वामी बन उन्नति पथ पर आगे बढ़ना चाहते हैं तो प्रतिदिन प्रात: व सायं संध्या काल में उस परम पिता परमात्मा की साधना करने के लिए उस प्रभु के पास अपना आसन लगायें, उसके समीप बैठ कर उस से प्रार्थना करें तो हम अपने कार्य में सिद्ध हस्त हो कर अनेक सफलताएं पा कर उन्नति को प्राप्त होंगे। अत: प्रतिदिन दोनों काल ईश्वर के समीप बैठ कर उस का आराधन आवश्यक है।

104, शिप्रा अपार्टमेंट, कौशाम्बी,
गाजियाबाद उ.प्र.
चलावार्ता : 09718 528 068

भ्रूण हत्या पर चक्रकीर्ति सामवेदी का शोधलेख

भ्रूण हत्या की नारकीय अग्नि में जलता हुआ नारी की पूजा करने वाला भारत

।। मातृ देवो भवः ।।

(माता देवता के समान है ।)

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता। यत्रेतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।

(जहां नारी की पूजा होती है वहीं देवता निवास करते हैं, जहां नारी का सम्मान नहीं होता वहां समस्त कार्य निष्फल होते हैं।)

''अमेरिका में सन् 1984 में एक सम्मेलन हुआ था- 'नेशनल राइट्स टू लाईफ कन्वेन्शन।' इस सम्मेलन में एक प्रतिनिधि ने डॉ. बर्नार्ड नेथेनसन द्वारा गर्भपात की बनाई गई एक अल्ट्रासाउन्ड फिल्म 'साइलेण्ट स्क्रीम' (गूंगी चीख) का जो विवरण दिया था, वह इस प्रकार है- गर्भ की वह मासूम बच्ची अभी दस सप्ताह की थी वह काफी चुस्त थी। हम उसे अपनी माँ के कोख में खेलते करवट बदलते व अगूंठा चूसते हुए देख रहे थे। उसके दिल की धड़कनों को भी हम देख पा रहे थे और वह उस समय 120 की साधारण गति से धड़क रहा था। सब कुछ बिल्कुल सामान्य था, किन्तु जैसे ही पहले औजार (सक्शन पम्प) ने गर्भाशय की दीवार को छुआ, वह मासूम बच्ची डर से एकदम घूमकर सिकुड़ गयी और उसके दिल की धड़कन काफी बढ़ गयी। हालांकि अभी तक किसी औजार ने बच्ची को छुआ तक भी नहीं था, लेकिन उसे अनुभव हो गया था कि कोई चीज उसके आरामगाह उसके सुरक्षित क्षेत्र पर हमला करने का प्रयत्न कर रही है।

हम दशहत से भरे यह देख रहे थे कि किस तरह वह औजार उस नन्हीं-मुन्नी मासूम गुड़िया सी बच्ची के टुकड़े-टुकड़े कर रहा था। पहले कमर, फिर पैर आदि से टुकड़े ऐसे काटे जा रहे थे जैसे वह जीवित प्राणी न होकर कोई गाजर-मूली हो और वह बच्ची दर्द से छटपटाती हुई, सिकुड़कर घूम-घूमकर तड़पती हूई इस हत्यारे औजार से बचने का प्रयत्न कर रही थी वह इस बुरी तरह डर गई थी कि एक समय उसके दिल की धड़कन 200 तक पहुंच गयी। मैंने स्वयं अपनी आंखो से उसको सिर पीछे छटकते हुए व मुँह खोलकर चीखने का प्रयत्न करते हुए देखा, जिसे डॉक्टर नेथेनसन ने उचित ही 'गूंगी चीख' या 'मूक पुकार' कहा है। अन्त में हमने वह नृशंस व वीभत्स दृश्य भी देखा, जब संडासी उसकी खोपड़ी को तोड़ने के लिए तलाश रही थी और फिर दबाकर उस कठोर खोपड़ी को तोड़ रही थी, क्योंकि सिर का वह भाग बगैर तोड़े सक्शन ट्यूब के माद्यम से बाहर नहीं निकाला जा सकता था।'

इत्या के इस वहभत्स खेल को सम्पन्न करने में करीब पन्द्रह मिनट का समय लगा और इसके दर्दनाक दृश्य का अनुमान इससे अधिक और कैसे लगाया जा सकता है कि जिस डॉक्टर ने यह गर्भपात किया था और जिसने मात्र कौतूहलवश इसकी फिल्म बना ली थी, उसने जब स्वयं इस फिल्म को देखा तो वह अपना क्लीनिक छोड़कर चला गया और फिर वापस नही आया।''

नई तकनीके अस्तित्व में आई तो नये तरीके भी अस्तित्व में आने लगे। स्त्री के गर्भ में ही कन्या भ्रूण की पहचान कर ली जाती है और उस अजन्मी कन्या के गर्भ में ही टुकडे-टुकड़े कर दिये जाते हैं।

भौतिकता की दौड़ में चिकित्सक नंगे हो रहे हैं। जरा चिकित्सकों की इस भाषा पर ध्यान दें:-

1. ''वो थोड़ी देर रोएगी, लेकिन जिन्दा नहीं रहेगी'' 2. ''इस तरह होता रहा है'' 3. ''हम करते आये हैं, परेशानी की कोई बात नहीं'' 4. ''कहीं भी गढ़ढा खोदकर गाढ़ देना'' 5. ''पहले मरा हुआ साबित करना होगा, फिर हम आसानी से गर्भपात कर देंगे''

ये उन चिकित्सकों के वाक्य हैं जो उन्होंने गर्भपात कराने वाली महिलाओं से कहे हैं। ये दरिन्दे चिकित्सक मात्र रुपये 1500/- में गर्भ में पल रही कन्या भ्रूण की हत्या करने को तैयार हैं। वर्तमान समय में कन्या भ्रूण हत्या एक अत्यन्त गंभीर समस्या के रूप में हमारे समाज के समक्ष मुंह बाऐ खड़ा है। इस समस्या से सम्पूर्ण राष्ट्र चिन्तित है, परन्तु आश्यर्यजनक तथ्य यह है कि कन्या भ्रूण हत्या को रोकने के लिये बनाया गया कानून P.N.D.T. Act., 1994 इस दिशा में गत 12 वर्षो में भी कोई सार्थक परिणाम नहीं दे पाया।

कन्या भ्रूण हत्या व नवजात कन्या शिशु हत्या से देश में स्त्री-पुरूष जनसंख्या का अनुपात चरमरा गया है। यह तथ्य महिलाओं पर बढ़ रहे यौन उत्पीड़न, बलात्कार, दहेज हत्या, तेजाब फेंकने, जहर देने, मानसिक यातना आदि कृत्यों से स्पष्ट परिलक्षित होता है। महिलाओं के प्रति बढ़ रहे शारीरिक व मानसिक यातनाओं से स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि हमारे समाज मे जहां एक तरफ तो लक्ष्मी, सरस्वती व दुर्गा की अराधना होती है वहीं दूसरी ओर सम्पूर्ण समाज भौतिकवाद, उपभोगतावाद दहेज, कर्मकाण्ड आदि की आड़ में उसी की भ्रूण हत्या व शिशु हत्या जैसे जधन्य व शर्मनाक कृत्यों में संलग्न है।

दुर्जनों से दूर ही रहें

आचार्य ब्र. नन्दकिशोर

ग्रीष्मसूर्यांशुसंतप्तबुद्वेजनमनाश्रयम् ।
मरुस्थलमिवोदग्रं त्यजेद् दुर्जनसङ्गतम् ।।

(शु.नी. 1 अ. 163)

ग्रीष्म ऋतु के सूर्य की किरणों के समान सन्तापक, उद्वेग उत्पन्न करने- वाली छाया के लिए वृन्तादिन के आश्रय से हीन, मरुभूमि की भाँति भयंकर दुर्जन की संगति का परित्याग कर देना चाहिए।

निःश्वासोद्गीर्णहुतभुग्धूम्रीकृताननैः।
वरमाशीविषैः सङ्गं कुर्यान्त त्वेव दुर्जनैः।

(शु.नी. 1 अ. 164)

जिन सर्पो के मुख से विष-अग्नि की ज्वालाएँ निकल रही हों और मुख विष-अग्नि के धुएँ से भरा हो, ऐसे सर्पों के साथ रहना अच्छा है किन्तु दुर्जनों के साथ रहना अच्छा नहीं है। तात्पर्य यह है कि दुर्जनों का संग विषधरों से भी भयंकर है।

क्रियतेऽभ्यर्हणीयाय सुजनाय यथाऽञ्जलिः।
ततः साधुतरः कार्यो दुर्जनाय हितार्थिना ।।

(शु. नी. 1 अ. 165)

अपना कल्याण चाहनेवाले के लिए उचित है कि वह जिस प्रकार आदरणीय सज्जनों के लिए हाथ जोड़ता है, उससे अधिक दुर्जनों के लिए हाथ जोड़े अर्थात् सज्जन से अधिक दुर्जन का सम्मान उसकी प्रसन्नता के लिए करके उससे अपना पिण्ड छुड़ाए।

न दुर्जनैः सह संसर्गः कर्तव्यः।

(चा.सू. 215)

अर्थात् दुष्टों का संसर्ग न करे।

उपकारोऽपि नीचानामपकारो हि जायते ।
पयःपानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्द्धनम् ।।

नीचजनों का तो उपकार करना भी अपकार का ही कारण बन जाता है, जैसे साँपों को दूध पिलाना केवळ उनका विष ही बढानेवाला होता है।

खलः सर्षपमात्राणि परछिद्राणि पश्यति ।
आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति ।।

दुष्ट मनुष्य दूसरे के सरसों के समान क्षुद्र दोषों को भी देखता रहता है, और अपने बिल्व के समान बड़े दोषों को भी नहीं देखता।

दुर्जनः प्रियवादी च, नैतद्विश्वासकारणम् ।
मधु तिष्ठति जिह्वाऽग्रे, हृदि हलाहलं विषम् ।।

जो दुर्जन है यदि वह प्रिय बोलता है तो भी वह विश्वास के योग्य नहीं होता। ऐसे दुर्जन के जिह्वाग्र भाग पर तो मधु होता है और अन्दर हलाहल विष होता है।

तक्षकस्य विषं दन्ते, मक्षिकाया विषं शिरः।
वृश्चिकस्य विषं पुच्छे, सर्वाङ्गे दुर्जनो विषम् ।।

साँप के दाँत में विष होता है, मक्खी के सिर में विष होता है, बिच्छू की पूँछ में विष होता है, किन्तु दुर्जन के तो संपूर्ण अंगों में विष होता है।

न जारजातस्य ललाटश्रृङ्गं, कुलप्रसूतस्य न पाणिपद्म ।
यदा यदा मुञ्चति वाक्यबाणं, तदा तदा जातिकुलप्रमाणम् ।।

नीच कुल में उत्पन्न व्यक्ति के मस्तक में सींग नहीं होते, और कुलीन के हाथ में कमल नहीं होता। सज्जन या दुर्जन की इतनी-सी पहचान है कि दुर्जन जब-जब वाक्य-रूपी बाण को छोड़ता है तब-तब उसकी जाति और कुल का प्रमाण मिल जाता है।

न स्थातव्यं न गन्तव्यं क्षणमप्यधमैः सह ।
पयोऽपि शौण्डिकीहस्ते मदिरां मन्यते जनः ।।

अधम पुरुषों के साथ एक क्षण भी उठना-बैठना नहीं चाहिए, जैसे कलाल के हाथ में दूध भी हो तो लोग उसे शराब ही समझते हैं।

अणुरप्यसतां सङ्गः सद्गुणं हन्ति विस्तृतम् ।
गुणरूपान्तरं याति तक्रयोगाद् यथा पयः ।।

दुर्जनों का थोड़ा-सा कुसंग भी विस्तृत गुणराशि गुणराशि को नष्ट कर देता है, जैसे कि थोड़े-से तक्र (छाछ) के संग से अमृत के समान दूध भी गुण और रूप में सर्वथा भिन्न हो जाता है।

आनन्दमृगदावाग्निः शीलशाखिमद्द्विजः।
ज्ञानदीपमहावायुरयं खलसमागमः ।।

दुष्टों की संगति आनन्दरूपी मृग को भगाने के लिए भयंकर जंगल की आग का कार्य करती है, सदाचाररूपी वृक्ष को उखाड़ने के लिए मदोन्मत्त हाथी का कार्य करती है और ज्ञानरुपी दीपक को बुझाने के लिए प्रचण्ड आँधी का कार्य करती है।

असत्सङ्गाद् गुणज्ञोऽपि विषयासक्तमानसः ।
अकस्मात्प्रलयं याति गीतरक्तो यथा मृगः ।।

जिस प्रकार से गीत में फँसा हुआ हिरण अकस्मात् मौत को प्राप्त होता है, उसी प्रकार विषयों में फँसे हुए मनवाला गुणवान् व्यक्ति भी दुष्टों के संग से दुःख को प्राप्त होता है।

किसी संस्कृत के कवि ने कुसंग के विषय में कहा है-

पापं वर्धयते, चिनोति कुमतिं, कीर्त्यङ्गना नश्यति ।
धर्मं ध्वंसति, तनोति विपदं, सम्पत्तिमुन्मर्दति ।।
नीतिं हन्ति, विनीतिमत्र कुरुते कोपं धुनीते समम् ।

किं वा दुर्जनसङ्गतिर्न कुरुते लोकद्वयध्वंसिनी ।।

कुसंग, पाप को बढ़ाता है, बुद्धि को मलिन कर देता है, कीर्ति को नष्ट करता है, धर्म का ध्वंस कर आपत्तियों के पहाड़ खड़े कर देता है, और धन, सम्पत्ति, न्याय आदि का लोप हो जाता है, स्वभाव चिड़चिड़ा और क्रोधी बन जाता है। ऐसा कौन-सा दुष्कर्म है जिसको कि इस लोक तथा परलोक का नाश करने वाली कुसंगति न करवाती हो।

न व्याघ्रः क्षुधयातुरोऽपि कुपितो, नाशीविषः पन्नगो,
नारातिर्बलसत्वबुद्धिकलितो, मत्तः करीन्द्रो न च ।
तं शक्नोति न कर्तुमत्र नृपतिः कण्ठीरवो नोद्धतो,
दोषं दुर्जनसङ्गतिर्वितनुते यं देहिनां निन्दिता ।।

भूखा तथा क्रुद्ध शेर, भयंकर विषधर सर्प, बुद्धि व सेना आदि से बल-सम्पन्न शत्रु, मदमस्त हाथी और प्रभुता-सम्पन्न राजा भी वह हानि नहीं कर सकता जो भयंकर नाश कुसंग में पड़ने से होता है।

कुसंग के विषय में भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता के द्वितीय अध्याय में प्रकाश डाला है।

ध्यायतो विषयान् पुसः सङ्गस्तेषूपजायते,
सङ्गात् सञ्जायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते ।
क्रोधाद् भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।।

इन्द्रियों के विषयों का ध्यान करते-करते पुरुष का उन विषयों के साथ संग पैदा हो जाता है, विषयों के सतत संग से ध्यान से उनके प्रति 'कामना' पैदा हो जाती है, कामना पैदा हो जाने के बाद (जब उसकी पूर्ति में बाधा पड़ती है तब) क्रोध पैदा होता है ।। क्रोध से अत्यन्त मूढ़-भाव पैदा हो जाता है, मूढ़भाव से स्मृति में भ्रम हो जाता है, स्मृति में भ्रम हो जाने से बुद्धि का नाश हो जाता है, बुद्धि के नष्ट हो जाने से व्यक्ति ही नष्ट हो जाता है।

संग किसका करें ?

संसार में प्रायः देखा जाता है कि जो जैसा होता है वह वैसों से ही मित्रता स्थापित करता है, उन्हीं के साथ खाना-पीना और उठना-बैठना होता है। 'पञ्चतंत्र' में लिखा है-

मृगा मृगैः सङ्गमनुव्रजन्ति,
गावश्च गोभिस्तुरगास्तुरङ्गैः।
मूर्खाश्च मूर्खैः सुधियः सुधीभिः,
समानशीलव्यसनेषु सख्यम् ।।

अर्थात् मृग मृगों के साथ रहना चाहते हैं, गौ गौओं के साथ, घोड़े घोड़ों के साथ, मूर्ख मूर्खों के संग और बुद्धिमान् बुद्धिमानों के साथ रहना चाहते हैं, क्योकि जिनका समान शील और व्यसन होता है उन्हीं की परस्पर मैत्री होती है।

❀❀❀

यजुर्वेद-ज्योति

१९ त्र्यम्बक देव की उपासना

ऋषिः बन्धुः। देवता रुद्रः। छन्दः आर्षी विराट् पङ्क्तिः।
अव रुद्रमदीमह्यव देवं त्र्यम्बकम्
यथा नो वस्यसस्करद्यथा नः श्रेयसस्करद्यथा नो व्यवसायतात्।।

- यजु 0 3/58

हम **(रुद्रं[1])** रुद्र परमेश्वर से **(अव अदीमहि[2])** अपने दोषों और दुःखों का क्षय करवा लें, **(त्र्यम्बकं[3] देवं)** त्र्यम्बक देव से **(अव अदीमहि)** पापाचरणों का क्षय करवा लें, **(यथा)** जिससे, वह (नः) हमें **(वस्यसः[4])** औरों से अच्छा नगरनिवासी **(करत्)** कर दे, **(यथा)** जिससे, वह (नः) हमें **(श्रेयसः)** प्रशस्ततर **(करत्[5])** कर दे, **(यथा)** जिससे, वह (नः) हमें **(व्यवसाययात्)** व्यवसायी और निश्चयात्मक बुद्धिवाला कर दे।

आओ, रुद्र प्रभु से हम अपने दोष दूर करवा लें, त्र्यम्बक देव से अपने दोष दूर करवा लें। रुद्र परमेश्वर का नाम है, क्योंकि वह दुष्टों को दण्ड देकर रुलाता है।[6] यदि हम उसकी दण्ड-शक्ति का ध्यान रखेंगे, तो दुष्टता करना छोड़ देंगे। सत्योपदेश करने के कारण भी वह रुद्र कहलाता है।[7] उसके सत्योपदेश सुन कर भी हम दोषों को त्याग देंगे। त्र्यम्बक पौराणिक सम्प्रदाय में त्रिनेत्र होने के कारण महादेव को कहते हैं, कामदेव को भस्म करने के लिए उन्होंने एक नेत्र अपने मस्तक में निकाल लिया था। किन्तु महादेव परमेश्वर का तो अशरीरी होने से एक भी नेत्र नहीं है। वे तो बिना नेत्र के ही सबको देखते हैं। यदि आलङ्कारिक दृष्टि से देखें तो त्रिनेत्र क्या, वे तो सहस्राक्ष हैं।[9] अतः सृष्टि, स्थिति, प्रलय तीनों को गति देने के कारण मन, बुद्धि, आत्मा तीनों को उपदेश देने के कारण[10] तथा तीनों कालों में एकरस ज्ञान रखने के कारण परमेश्वर त्र्यम्बक कहलाते हैं।[11] जब हम यह ध्यान करेंगे कि परमेश्वर इतना महान् है कि सृष्टि की उत्पत्ति, सृष्टि का धारण और यथासमय उसकी प्रलय भी वह अकेला ही करता है, अतः हमारे दोष दूर हो जायेंगे। उसके उपदेश से भी हमारे मन, बुद्धि, आत्मा निर्दोष होंगे। उसका ज्ञान सब कालों में एकरस रहता है, यदि हम दोष करेंगे, तो उसे वह कभी भूलेगा नहीं और हमें दण्ड अवश्य देगा, यह विचार भी हमें निर्दोष बनाने में सहायक होगा। परमेश्वर देव है, दानी है, दीप्तिमान् है, दीप्ति देनेवाला है।[11] अतः वह हमें सद्गुणों का दान करेगा, हमें सद्गुणों से देदीप्यमान करेगा, इस विश्वास से भी हम निर्दोष हो सकेंगे। निर्दोष होने पर शक्तिमान् होकर हम प्रभु-कृपा से तथा पुरुषार्थ से आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक दुःखों को भी दूर कर सकेंगे।

जब तक हम दोषों, अपराधों एवं पापों में सलग्न रहेंगे, तब तक किसी राष्ट्र प्रदेश या नगर के स्थायी निवासियों की श्रेणी में भी हम नहीं आ सकते। त्र्यम्बक रुद्र के ध्यान से अपनी-अपनी अपराधवृत्तियों और पापवृत्तियों को नष्ट करवाकर ही हम स्वागतयोग्य प्रशस्त निवासी होने का प्रमाणपत्र पा सकते हैं। त्र्यम्बक रुद्र का पारसमणिसदृश सम्पर्क लोहे के तुल्य हमें सुवर्णसदृश, प्रशस्त तथा 'श्रेयान्' बना सकता है, रुद्र प्रभु के साथ सम्पर्क से पूर्व जो हमारी स्थिति और योग्यता थी, उसकी अपेक्षा हमें बहुत ऊँचा उठा सकता है। त्र्यम्बक रुद्र प्रभु हमें व्यवसायात्मिका बुद्धिवाले, असमञ्जस की स्थिति में तुरन्त सही निर्णय कर लेने में समर्थनिश्चयात्मक वृत्तिवाले और व्यवसायी भी बना सकते हैं, क्योंकि वे स्वयं इन गुणों से युक्त हैं। कौन मनुष्य किस कोटि के अपराध, दुष्कर्म या पाप का पात्र है और उसे क्या दण्ड मिलना चाहिए, तथा कौन मनुष्य किन सुकर्मों का कर्ता है और उसे सत्फल या पुरस्कार दिया जाना चाहिए इसका वे त्वरित निर्णय कर लेते हैं। हम भी उनसे शिक्षा लेकर किसी भी समस्या का त्वरित समाधान करनेवाले बनें।

दयानन्द और पाश्चात्य मत

डॉ. भवानीलाल भारतीय

दयानन्द ते भारत के जिन हिस्सों में भ्रमण किया वहां ईसाइयत और इस्लाम सक्रिय थे। पंजाब में यह स्थिति और भी स्पष्ट थी। वहां दयानन्द इन मतों के प्रचारकों से मिले तथा उनसे लम्बे वाद-विवाद किये। इन मुबाहिसों के साथ साथ उन्होंने बाइबिल तथा कुरान का अध्ययन भी जारी रखा। दयानन्द ने यहूदी धर्म का या यहूदी ग्रन्थों का अध्ययन किया था, इसकी कोई जानकारी नहीं है। सत्यार्थप्रकाश के तेरहवें समुल्लास की अनुभूमिका में दयानन्द ने स्पष्ट कर दिया है कि ईसाइयों द्वारा मान्य बाइबिल की समीक्षा में यहूदी मत की समीक्षा भी समाविष्ट है। वे यह भी कहते हैं कि ईसाइयों की तुलना में यहूदी मत गौण महत्त्व का है।

अपने कलकत्ता प्रवास के समय दयानन्द को धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन का महत्त्व अनुभव हुआ। यहां वे ईसाइयत तथा इस्लाम से अधिक परिचित हुए तथा इन मज़हबों के संदर्भ में हिन्दू धर्म को परखा। इसका परिणाम यह निकला कि अब उन्हें वैदिक धर्म की श्रेष्ठता का और अधिक विश्वास हो गया। कलकत्ता के बाद उन्होंने अपना कार्यक्षेत्र गांवों की अपेक्षा नगरों को बनाया। वे जानते थे कि गांवो के लोग तो अधिकांश में हिन्दू ही हैं जब कि नगरों में उनके विचार सुनने के लिए हिन्दुओं के साथ साथ ईसाई तथा मुसलमान भी आयेंगे। यहां स्वामीजी ने जिस प्रकार हिन्दू मतों का खण्डन किया था, उसी प्रकार वे इसाइयत तथा इस्लाम के बारे में भी अपने तीव्र विचार रखने लगे। वेद को कसौटी बना कर उन्होंने सभी मतों का खण्डन किया। सत्यार्थप्रकाश के सातवें समुल्लास में वेदों के ईश्वरोक्त होने में तीन प्रमाण दिये गये हैं- (1) परमात्मा के अत्यन्त दयालु होने के कारण उसके द्वारा वेद का ज्ञान दिया जाना उचित है। (2) वेदों में वर्णित विषय भी उनके ईश्वरोक्त होने की साक्षी देते हैं। (3) वेद अन्य ग्रन्थों तथा धर्मों के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत करते है। दयानन्द ने सृष्टि की रचना का जो मत प्रस्तुत किया है वह यह मान कर चलता है कि संसार में मनुष्य का जन्म एक भोले भाले निरीह प्राणी के रूप में हुआ था और संस्कृत उसकी मातृभाषा थी। इस प्रकार वेदों की भाषा होने के कारण संस्कृत सार्वभौम भाषा है। यह किसी देश विशेष की भाषा नहीं है और उसकी यह सार्वभौम प्रकृति ही उसके ईश्वर से प्रादुर्भूत होने का प्रमाण है। इसके विपरीत बाइबिल और कुरान विशिष्ट भाषाओं मे लिखी गई हैं इसलिए ये वेद की तुलना में गौण हैं।

कलकत्ता जाने के पहले दयानन्द गंगा के तटवर्ती प्रदेश में घूमते रहे। यहां पर ही उनकी ईसाइयों से पहली मुठभेड़ हुई। डा. जॉर्डन्स लिखते है कि फर्रूखाबाद में तीन विदेशी पादरियों तथा कुछ हिन्दुस्तानी ईसाइयों से उनका वाद-विवाद हुआ। किन्तु सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण शास्त्रार्थ डा. हॉर्नले तथा रेवरेण्ड स्कॉट से हुआ। दोनों ने स्वामीजी के बारे में प्रशंसापूर्ण उद्गार व्यक्त किये तथा इन शास्त्रार्थों का विवरण स्वयं के पास सुरक्षित रखा था। स्कॉट ने स्वामीजी को न्यू टेस्टामेंट की एक प्रति भेंट की। उन्होंने उन्हे विभिन्न विषयो पर ईसाई दृष्टिकोण बताया। दयानन्द ने मुख्यतया परमात्मा तथा पापों को क्षमा किये जाने के ईसाई सिद्धान्त पर चर्चा की। स्वामीजी पाप क्षमा की धारणा से सहमत नहीं थे, क्योंकि वे इसे कर्म सिद्धान्त के प्रतिकूल मानते थे तथा कर्म का दायित्व कर्ता पर होना स्वीकार करते थे। डा. हॉर्नले की राय थी कि यद्यपि दयानन्द ने बाईबिल को पढ़ा है, किन्तु ध्यानपूर्वक नहीं बढ़ा।

कलकत्ता में दयानन्द ने ब्रह्मसमाज की आलोचना इस आधार पर की है-ये लोग ईसाइयत तथा अंग्रेजियत से अधिक प्रभावित है जब कि वेदों की उपेक्षा करते हैं। ईसा और मूसा की अतिशय प्रशंसा करते हैं जब कि प्राचीन वैदिक ऋषियों को भूल जाते हैं। कलकत्ता के ब्राह्म लोगों के धार्मिक क्षेत्रों में सब मतों को स्वीकार करने की दयानन्द कृत आलोचना को उनके अन्य मतों के प्रति दृष्टिकोण से साथ मिलाकर देखना उचित है। दयानन्द ने यह स्वीकार किया था कि यदि वेद के प्रमाण को स्वीकार करें तो अनेक धार्मिक वर्ग एक साथ रह सकते हैं, उसी प्रकार जैसे अनेक नदियाँ वैदिक ज्ञान के महासागर में प्रविष्ट हो जाती हैं। मार्च 1877 में दयानन्द ने चांदापुर (जिला शाहजहांपुर) में ईसाई पादरियों तथा मूसलमान मौलवियों से शास्त्रार्थ किया। यहां भी रेवरेण्ड स्कॉट मुख्य ईसाई प्रवक्ता थे। शास्त्रार्थ में मुख्य विषय सृष्टि उत्पत्ति तथा मोक्ष थे। ऐसा लगता है कि इस शास्त्रार्थ के बाद स्वामीजी ने सृष्टि रचना विषयक अपने मत में परिवर्तन किया था क्योंकि अब वे सृष्टि का अनादित्व स्वीकार करने लगे थे। सृष्टि और प्रलय अनादि काल से होते चले आये हैं और होते रहेंगे। पंजाब में ईसाइयत के प्रति दयानन्द का रुख अधिक आक्रामक रहा, क्योंकि यहां पादरियों से उन्हें ऊष्मा रहित प्रतिक्रिया मिली। अपने सार्वजनिक व्याख्यानों में उन्होंने ईसाइयत की यह कह कर आलोचना की कि ईसाइयों को जो शक्ति मिल रही है वह इसलिए कि वे भी वैदिक सदगुणों को ही धारण किये हैं। उन्होंने ईसाई बने हिन्दुओं को शुद्ध कर पुनः हिन्दू बनाया। इसके लिए उन्होंने प्राचीन काल में प्रचलित शुद्धि संस्कार की सहायता ली जिससे पतित हिन्दू का पुनः संस्कार किया जा सके।

ईसाइयत के बारे में दयानन्द का मुख्य लेखन सत्यार्थप्रकाश का 13वां समुल्लास है। उनकी ईसाइयत की आलोचना बाइबिल की समीक्षा तक सीमित है क्योंकि बाइबिल ही इस मत का मूल स्रोत है। यह धारणा उनके इस मन्तव्य के समानान्तर है जहां वे कहते कि हिन्दू धर्म के सब मत-मतान्तर वेद को स्वत: प्रमाण मानते हैं। डा. जॉर्डन्स का कहना है कि तेरहवें समुल्लास को लिखने में स्वामीजी ने बाइबिल के संस्कृत तथा हिन्दी अनुवादों को अपने समक्ष रखा होगा। इसी लेखक ने दयानन्द द्वारा की गई ईसाइयता की आलोचना की शैली तथा उसके परिणाम पर भी अपने विचार प्रस्तुत किये हैं- इस समुल्लास में प्रस्तुत की गई दयानन्द की धारणा बड़ी सरल है। ईसाइयत के सारे दावे बाइबिल पर टिके हैं इसलिए बाइबिल की सत्यता या असत्यता ईसाइयत के बारे में फैसला करेगी। बाइबिल ईश्वरी वाक्य नहीं है इसलिए बाइबिल को ईश्वरोक्त नहीं माना जा सकता, फलत: ईसाइयत सत्य धर्म नहीं है। यह सिद्ध करने के लिए कि बाइबिल ईश्वर का वाक्य नहीं है, अनेक प्रमाण दिये गये हैं। बाइबिल

सार्वभौम ग्रन्थ नहीं है, वह स्थान विशेष तथा काल विशेष का उल्लेख करती है तथा इस में लोगों का इतिहास भी वर्णित हुआ है। बाइबिल में युक्ति एवं तर्क विरुद्ध अनेक बातें है। बाइबिल वर्णित ईश्वर देश और काल सापेक्ष्य है, वह तुनक मिजाज है, वंचक है, ईर्ष्यालु तथा कठोर है तथा जादूगर की भांति खुशामदी है। वह दैवी प्रवृत्तियों से सर्वथा रहित है। बाइबिल में असम्भव बातों की भरमार है। इसके कथन परस्पर विरुद्ध, मूर्खतापूर्ण और चमत्कारों से भरे हैं तथा वैज्ञानिक सत्यता से अपनी अनभिज्ञता दर्शाते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें अनेक कहानियां तथा ऐसे निर्देश पाये जाते हैं जो अनैतिक हैं, क्रूरता तथा धोखाधड़ी की प्रशंसा करते हैं तथा पाप को बढ़ाते हैं। पुराने और नये टेस्टामेंटों के उदाहरण देकर दयानन्द ने उपर्युक्त आक्षेपों का विस्तार किया है।

डा. जॉर्डन्स टिप्पणी करते हैं कि ईसाइयत की आलोचना में दयानन्द ने बाइबिल की मूल भावना की उपेक्षा की है। इस प्रकार वे अपने उसी अनुरोध से मुकर जाते हैं जो उन्होंने सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में अपने ग्रन्थ के पाठकों से किया है। वहां वे पाठक से कहते हैं कि उसे लेखक के उद्देश्य को समझना चाहिए, ग्रन्थ में दिये गये संदर्भ (प्रसंग) को देखना चाहिए तथा शब्दों के पूर्वापर सम सम्बन्ध की देखना चाहिए। अपने द्वारा दी गई हिदायतों से प्रतिकूल स्वामीजी ने बाइबिल के कुछ चुने हुए अनुच्छेदो को लेकर उनके शाब्दिक अनुवाद के आधार पर उनकी समीक्षाएं लिख दी। यहां भी वे उन्ही पूर्वानुमानों को लेकर चलते हैं जो अन्य मतों की समीक्षा में प्रयुक्त किये है। तथापि उनकी यह आलोचना शैली हिन्दू धर्म को बदनाम करने वाले पादरियों द्वारा की गई हिन्दू धर्म की आलोचना से भिन्न है।

चौदहवे समुल्लास की अनुभूमिका में दयानन्द ने स्पष्ट किया है कि इस कार्य में उन्होंने मूल अरबी से उर्दू में अनूदित कुरान के हिन्दी अनुवाद का प्रयोग किया है। यहां भी दयानन्द ने पूर्व प्रयुक्त समीक्षा प्रणाली का ही प्रयोग किया है उन्होंने कुरान का आलोचनात्मक विश्लेषण किया और बताया कि इस ग्रन्थ को शिक्षाएं वेदों की स्वत: प्रमाण, तर्क पूर्ण तथा नैतिक सत्यों से युक्त शिक्षाओं से विपरीत हैं। कुरान के प्रथम सूरा की प्रथम आयत 'शुरु करता हूँ अल्लाह के नाम पर जो करुणामय और दयालु है' पर दयानन्द की टिप्पणी है कि यदि कुरान का खुदा दयालु है तो उसने मनुष्यों को यह आज्ञा क्यों दी कि वे अपने भोजन के लिए अन्य प्राणियों का वध कर सकते हैं। क्या ये प्राणी निर्दोष नहीं हैं? दयानन्द की दृष्टि में मुसलमानों का खुदा कदापि दयालु नहीं कहा जा सकता क्योंकि वह उन प्राणियों के प्रति दया नहीं दिखलाता जो प्रतिदिन मुसलमान कसाइयों द्वारा मारे जाते है। वह पापियों के प्रति भी दया नहीं दिखाता क्योंकि कुरान कहता है कि काफिरों को तलवार के घाट उतार दो। अपनी आलोचना में दयानन्द सर्वत्र यही दिखाते हैं कि कुरान लोगों को लड़ाना सिखाती है, काफिरों को लूटने तथा कत्ल करने का आदेश देती है। दयानन्द की तार्किक संगतियुक्त दृष्टि वहां स्पष्ट दिखाई देती है जब वे मुसलमानों को फटकारते हुए करते हैं कि यदि तुम ईश्वरीय पुस्तक को मानते हो तो बाइबिल को क्यों नही मानते और यदि वे बाइबिल को मानते हैं तो कुरान के खुदाई कलाम होने में क्या प्रमाण है? उसे खुदा ने मोहम्मद पर नाज़िल क्यों किया? उनके विचार में इन दोनों पुस्तकों में इतनी समानता है जिससे यह शंका होती है कि परमात्मा ने एक बार ही अन्तिम रूप में अपना ज्ञान क्यों नहीं दे दिया? वेदों की भांति एक ही पुस्तक ईश्वरीय ज्ञान हो सकती है। दो या अधिक नहीं। कुरान का अध्ययन करने तथा मुस्लिम विद्वानों से शास्त्रार्थ करने के लिए दयानन्द की प्रशंसा करनी चाहिए किन्तु यह भी नहीं भूलना चाहिए कि दयानन्द की आलोचना पूर्व निर्धारित अनुमानों पर आश्रित है और छिछली पण्डिताऊ शैली की है जो केवल शास्त्रार्थ जीतने के लिए ही प्रयुक्त हुई है।

निष्कर्ष

उन्नीसवी शताब्दी के एक हिन्दू चिन्तक स्वामी दयानन्द ने अन्य धर्मों के अध्ययन में प्रशंसनीय रुचि दिखाई। उनका दृष्टिकोण विद्वतापूर्ण था और उन्होंने अन्य धर्मों के स्रोत माने गये ग्रन्थों को मूल रूप में पढ़ने की बात कही तथा कुरान का हिन्दी में अनुवाद कराया जो इससे पहले नहीं था। तथापि उनका पर धर्मों के अध्ययन का प्रकार खण्डनात्मक तथा शास्त्रनुसारी था। वे ऐसे उद्धरणों का चयन कर लेते हैं जो तार्किक असंगति से युक्त होते थे या ज़िनमें नैतिक स्खलन दिखाई देता था। यद्यकि उन्होंने वेदार्थ तथा वेदाध्ययन में आने वाली कठिनाइयों का समाधान करने के लिए वेदों में प्रतीत होने वाली देवगाथाओं को अन्यथा व्याख्यात किया, ऐसा करके उन्होंने नैतिक दुर्बलता तथा तर्क विरुद्धता के आक्षेपों से वेदों को बचाया किन्तु व्याख्या पद्धति की यह सुविधा वे अन्य मत वालों को देने के लिए तैयार नहीं थे। इसका मुख्य प्रयोजन शास्त्रार्थों में विजय पाने अथवा धार्मिक वाद-विवादों में प्रतिपक्ष को पराजित करने का ही था, न कि निष्पक्ष भाव से सबको साथ लेकर सत्य की तलाश, जिसका कि वे प्राय: बखान करते रहते थे। किन्तु इस मामले में उन्नीसवी शताब्दी के अन्य धर्मों के अच्छे विद्वानों से वे किसी तरह भिन्न नहीं थे।

अपने युग के अन्य विद्वानों से हट कर दयानन्द ने अन्य धर्मों की भांति अपने धर्म की आलोचना की। इसमें उनका विचार हिन्दू धर्म को त्रुटियों और भ्रष्टाचार से मुक्ति दिलाना था, ताकि वर्तमान काल के हिन्दू अपनी प्राचीन परम्पराओं को लेकर गौरव का अनुभव कर सकें। अन्य धर्मों के उनके अध्ययन ने उन्हें हिन्दू धर्म के प्रति व्यापक दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित किया ताकि वे हिन्दुओं की उन न्यूनताओं को दूर कर सके जिनके कारण वे मामूली बातों के लिए एक दूसरे का विरोध करने लगते हैं। उनकी दृष्टि में वैदिक धर्म एक शास्वत, सार्वभौम सत्य का पर्याय है जो न केवल हिन्दू सम्प्रदायों को अपितु अन्य धर्मों में भी सच्ची एकता पैदा कर सकता है। इस प्रकार दयानन्द एक साथ आधुनिक थे, परिवर्तन लाने वाले थे, साथ ही परम्परावादी भी थे। दयानन्द की यह दृष्टि हिन्दुओं को, धर्म बहुल समाज में, न केवल भारत में अपितु बाहर भी सफलता पूर्वक रहने की प्रेरणा देती है।

-वर्ल्ड पर्स्पपेक्टिव आन स्वामी दयानन्द पृ.264-274

स्वामी दयानन्द सरस्वती परिचय की दृष्टि में से साभार

यज्ञ और संन्यासी

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

यज्ञ-विधान के अन्तर्गत सामान्य प्रकरण के आरम्भ में ऋत्विजों का लक्षण करते हुए उसमें वर्ण तथा आश्रम का उल्लेख नहीं हुआ है। परन्तु मनुस्मृति आदि प्राचीन ग्रन्थों तथा सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका तथा संस्कारविधि आदि में जहाँ कहीं भी वर्णाश्रमों के कर्त्तव्यों का निर्देश हुआ है, वहाँ सर्वत्र याजन कर्म केवल ब्राह्मण का कहा गया है। ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ तथा संन्यास- इन तीन आश्रमों के कर्तव्यों में भी कहीं याजन कर्म का उल्लेख नहीं हुआ है। अत: ऋत्विक् तथा पुरोहित केवल ब्राह्मण गृहस्थ ही हो सकता है। पुरोहित के विषय में तो संस्कारविधि में जातकर्म संस्कार के अन्तर्गत टिप्पणी में ऋषि का स्पष्ट निर्देश है- ''धर्मात्मा, शास्त्रोक्त विधि को पूर्णरीति से जाननेहारे, विद्वान, सद्धर्मी, कुलीन, निर्व्यसनी, सुशील, वेदप्रिय, पूजनीय, सर्वोपकारी गृहस्थ की पुरोहित संज्ञा है।''

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में वर्णाश्रमविषयक के अन्तर्गत संन्यासी के कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निर्देश करते हुए ऋषि लिखते हैं-

''शिखासूत्रादिकं हुत्वा मुनिर्मननशील; सन् प्रव्रजति संन्यासं गृहणाति। पूर्वेषां त्रयाणामेवाश्रमिणामनुष्ठातुं योग्यं यद् बाह्यक्रियामयमस्ति, संन्यासिनां तन्न।''

अर्थात्- शिखासूत्रादि का होम करके मनस्वी होकर संन्यास ग्रहण करता है। पहले तीन आश्रमियों के अनुष्ठान करने योग्य जो कुछ भी है, चाहे वह क्रियामय न भी हो तो भी, वह सब संन्यासी के लिए नहीं है।

इतना ही नहीं, प्रथम तीन आश्रमियों के लिए विहित पंचमहायज्ञों का उल्लेख कर प्रकारान्तर से चतुर्थाश्रमी संन्यासी के लिए उनका निषेध करते हुए, उसके लिए विहित विशेष प्रकार के पंचमहायज्ञों का विधान करते हुए स्वामी जी लिखते हैं- ''एवं लक्षणा: पञ्चमहायज्ञा विज्ञानधर्मानुष्ठानमया भवन्तीति विज्ञेयम्''- संन्यासी के लिए इस प्रकार के विज्ञान और धर्मानुष्ठानवाले ही पञ्चमहायज्ञ होते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

यज्ञोपवीत का सम्बन्ध बाह्य कर्मकाण्ड की अग्नियों से होता है। स्वामीजी के पूर्वोद्धत निर्देश के अनुसार संन्यासी इन अग्नियों एवं तत्सम्बन्धी बाह्य कर्मकाण्डों का परित्याग कर देता है। परिणामत: इन बाह्य कर्मकाण्डों का अधिकार प्रदान करनेवाले यज्ञोपवीत के अन्यथा सिद्ध हो जाने पर वह उसे त्याग देता है।

शतपथ ब्राह्मण (2/6/1/18) में स्पष्ट कहा है-

''ते सर्व एव यज्ञोपवीतिनो भूत्वा इत्याद्यजमानश्च ब्रह्मा च पश्चात् परीत : पुरस्तादग्नीत्।''

अर्थात् ब्रह्मा, होता, अध्वर्यु, उद्धाता, यजमान आदि ये सब यज्ञोपवीती पश्चिम दिशा को चलते हैं और अग्नीत् पूर्व दिशा को।

इससे स्पष्ट है कि यदि संन्यासी ब्रह्मा, होता, उद्गाता, अध्वर्यु आदि कुछ भी बनेगा तो उसके लिए यज्ञोपवीती होना आवश्यक होगा, अन्यथा विधिहीन होने से यज्ञ निष्फल हो जाएगा। और यदि अब संन्यासी यज्ञोपवीत धारण करेगा तो वह संन्यास की दीक्षा लेते समय यज्ञोपवीत-त्याग की आश्रम-मर्यादा भंग करने का दोषी होगा।

ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार भी 'यज्ञोपवीती एव याजयेत'। यहाँ आया 'एव' पद द्रष्टव्य एवं मन्तव्य है। इस वचन से यज्ञोपवीतधारी ही यज्ञ कराने का अधिकारी है, अन्य अर्थात् अयज्ञोपवीती कदापि नहीं। लाट्यायन श्रौतसूत्र में भी इसी मत का समर्थन करते हुए लिखा है- ''सर्वेषां यज्ञोपवीतोदकाचमते नित्ये कर्मोपयाताम्''-1।2।4, अत: इसकी व्याख्या में स्पष्ट किया- **''सर्वेषां उद्गातृप्रभृतीनां चतुर्णामपि आर्त्विजी उपक्रमवेलायां यज्ञोपवीतमुदगाचमननं नित्य कर्मोपयतां कर्म कुर्वताम्।''**

अर्थात् यज्ञों में जो होता, अध्वर्यु, उद्गाता, ब्रह्मा आदि रूप से वरण किए गए ऋत्विज हैं, उनको कार्य के आरम्भ में यज्ञोपवीत धारण, जल का आचमन आदि कार्य करने चाहिएँ। संन्यासी के सन्दर्भ में यह सब कैसे संगत होगा?

यज्ञ में कुछ आहुतियाँ ब्रह्मा को भी देनी होती हैं। यज्ञ के अन्त में प्रायश्चित्ताहुति तो ब्रह्मा को अवश्य देनी होती है। इसके बिना यज्ञ पूर्ण हुआ नहीं माना जाता और ऐतरेय ब्राह्मण के 'यज्ञोपवीती एव याजयेत' इस स्पष्ट विधान के अनुसार अयज्ञोपवीती अहुति नहीं दे सकता। इसलिए अयज्ञोपवीती संन्यासी को यज्ञ का ब्रह्मा नहीं बनाया जा सकता।

ब्रह्मा द्वारा आहुति देने का विधान गोपथ ब्राह्मण में इस प्रकार किया है- **''यस्य चैवं विद्वान् ब्रह्मा दक्षिणत उदङ्मुख आसीनो यज्ञ आहुती जुहोतीति ब्राह्मणम्''।** यहाँ ब्रह्मा के आहुति देने का विधान करते हुए प्रकारान्तर से संन्यासी की ब्रह्मा के पद पर नियुक्ति का निषेध भी कर दिया है।

इस विषय में सार्वदेशिक सभा की धर्मार्य सभा ने व्यवस्था दी हुई है जो सभा के 77वें वार्षिक विवरण (वर्ष 1984-85) में इस प्रकार अंकित है-

''12- यज्ञ करना ब्रहचर्य, गृहस्थ, एवं वानप्रस्थ तक ही है। संन्यास आश्रम में यज्ञ नहीं है। पुरोहित केवल गृहस्थ होता है। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी पुरोहित कर्म नहीं करा सकते।''

जिस प्रकार वेदों, ब्राह्मणों, गृह्यसूत्रों, स्मृतियों आदि में वर्णाश्रमव्यवस्था के अन्तर्गत ब्राहमण के कर्तव्य कर्मों में यज्ञ करने-कराने तथा संस्कारों में पौरोहित्य करने का विधान किया गया है, वैसा निर्देश संन्यासी के लिए कहीं नहीं मिलता। शास्त्र के विरुद्ध अपने आचरण का औचित्य सिद्ध करने के प्रयास में कुछ लोग द्रविड़ प्राणायाम करते देखे जाते हैं। **''पञ्चजना: मम होत्रं जुषन्ताम्''** (ऋ. 10।53।5) में आए 'पञ्चजना:' पद से वे ब्राह्मणादि चार वर्णो के साथ पाँचवें 'संन्यासी' का ग्रहण करते हैं। पर 'पञ्चजन' से चार वर्ण और एक संन्यासी अभिप्रेत हैं, इसका उल्लेख कहीं नहीं मिलता। मिल भी नहीं सकता। गाय-भैंस के प्रसंग में तीसरे पदार्थ के रूप में भेड़, बकरी जैसे तत्सदृश पशु की गिनती हो सकती. है, मेज़-कुर्सी की नहीं। इसी प्रकार चार वर्णों के सन्दर्भ में वर्ण नहीं तो मनुष्य-वर्ग के किसी वर्णसदृश विभाग का ग्रहण हो सकता है, आश्रम का नहीं। प्राय: विद्वानों ने तथा कोशों में पाँचवें से निषाद का ग्रहण किया है।

उव्वट का लेख इस विषय में बड़ा स्पष्ट है। उनका निर्णय है- ''चत्वारो वर्णा: निषाद पञ्चम: पञ्चजन: तेषां यज्ञाधिकारोऽस्ति।'' आप्टे ने निषाद का अर्थ किया है- ''भारत की एक जंगली आदिम जाति, जैसे-मछुए, शिकारी आदि- 'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगम: शास्वती समा:' (वा.रा.) पतित जाति का मनुष्य, एक वर्णसंकर जाति, विशेषकर शूद्रा स्त्री से उत्पन्न ब्राह्मण का पुत्र (मनु. 10 । 8) । हमारा इस अर्थ के प्रति कोई आग्रह नहीं हो सकता। यज्ञोपवीती न होने से संन्यासी को शूद्रकोटि में नहीं डाला जा सकता।

'यदि पौरोहित्य अथवा यज्ञ कराने के लिए कोई गृहस्थ न मिले तो संन्यासी से यज्ञ या संस्कार कराने में क्या आपत्ति है? वस्तुतस्तु यह बहाना-मात्र है। हमने एक गोष्टी में ऐसा कहनेवाले दो प्रतिष्ठित संन्यासियों से पूछा- ''क्या किसी अभ्यर्थी यजमान से कभी आपने कहा है कि पहले आप किसी गृहस्थ विद्वान् की खोज करें, कोई नहीं मिलेगा तो हम करा देंगे?'' दोनों ने स्वीकार किया कि हम ऐसा कभी नहीं करते। उन्हीं में से एक से हमने कहा कि अमुक स्थान पर एक ऐसे गृहस्थ विद्वान् उपस्थित थे जिन्हें आप भी अपने से अधिक योग्य मानते हैं। तब उनके रहते आपने क्यों यज्ञ कराया? इसके उत्तर में वे क्या कह सकते थे? मौन साधकर रह गए। इसीलिए हम यह कहते हैं कि यह अपनी बात रखने के लिए बहानामात्र है।

यज्ञादि करना-कराना ब्राह्मण का शास्त्रोक्त धर्म है। यही उसकी आजीविका है। उस पर भरे-पूरे परिवार के भरण-पोषण का दायित्व है। उसकी तुलना में संन्यासी की आवश्यकताएँ सर्वथा नगण्य हैं। ऐसी अवस्था में किसी संन्यासी का यज्ञादि कराना शास्त्रविरुद्ध होने से अनधिकार चेष्टा होने के साथ-साथ एक गृहस्थ ब्राह्मण के प्रति अन्याय या अत्याचार नहीं है क्या? संन्यासियों के पौरोहित्य तथा यज्ञकर्म में प्रवृत्त होने के मूल में उनकी वितैषणा है जिसका कोई अन्त नहीं होता।

ब्रह्मा-ब्राह्मणग्रन्थों में लिखा है-

ऋग्वेदेन होता करोति यजुर्वेदेनाध्वर्यु: सामवेदेनोद्गाता अथर्वैर्वा ब्रह्मा।

अर्थात्- ऋग्वेद से होता, यजुर्वेद से अध्वर्यु, सामवेद से उद्गाता और अथर्ववेद से ब्रह्मा की नियुक्ति करे। ब्रह्मा की नियुक्ति के विषय में गोपथ ब्राह्मण (पूर्व. 2 । 24) में कहा है- **''अथर्वाङ्गिरोभिर्ब्रह्मत्वम् अथर्वाङ्गिरोविद् ब्राह्मणम्''**- अथर्व से ब्रह्मा होता है, अथर्व का जाननेवाला ब्रह्मा होता है। इसी से अथर्ववेद का एक नाम ब्रह्मवेद है। वस्तुत: ऋग्वेद से अथर्ववेद तक अर्थात् चारों वेदों का विद्वान् ब्रह्मा होता है। इसी से औपचारिक रूप में ब्रह्मा चतुर्मुख चार मुखवाला कहलाता है। वर्तमान में सदा सर्वत्र चारों वेदों के विद्वान् ब्रह्मा का मिलना संभव नहीं। तथापि जो व्यक्ति न संस्कृत का विद्वान है, न वेदादिशास्त्रों से परिचित है और न जिसे याजिक विधि-विधान की जानकारी है, उसे ब्रह्मा के आसन पर बिठाना इस पद का अवमूल्यन करना है। इन दिनों जो हिन्दी के शब्दों का भी शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकते, ऐसे लोगों के ब्रह्मत्व में किए जानेवाले यज्ञ से किस सुफल की आशा की जा सकती है? यदि ब्रहम के पद के अनुरूप व्यक्ति न मिले तो यज्ञ करानेवाले को संचालक, संयोजक, निदेशक, व्यवस्थापक जैसा नाम देकर काम चला लें, किन्तु ब्रह्मा पद का उपहास करना यज्ञ का अपमान करना है।

ब्रह्मा का काम कुण्ड के दक्षिण भाग में उत्तराभिमुख होकर यज्ञ की समाप्तिपर्यन्त चुप रहकर यज्ञ का निरीक्षण करना है। होता के द्वारा अन्यथा कर्म किए जाने अथवा उद्गाता के द्वारा मन्त्रपाठ में भूल होने पर संस्कृत में निर्देश-भर करे। यज्ञ में प्रयुक्त मन्त्र परब्रह्म के शब्द हैं। उन्हीं का उच्चारण होना चाहिए। ब्रह्मा के लिए आदेश है- **''ब्रह्मन् मा त्वं वदो बहु''** (यजु. 23 । 25)- हे ब्रह्मन्! तू बहुत मत बोल। शतपथ ब्राह्मण (1 । 7 । 4 ।19) में भी ब्रह्मा को चुपचाप बैठने का आदेश है। ऋषि दयानन्द ने'भवतन्न: समनसौ.' (यजु. 5 । 3) के भाष्य में लिखा है- ''यज्ञ प्राकृत मनुष्यों की भाषारूपी वचन से रहित हो।''

उपर्युक्त शास्त्रवचनों से यज्ञ में वाचालता या ब्रहम तक का प्रवचन करना निषिद्ध है। यज्ञ के बीच में रुक-रुकर मन्त्रों की व्याख्या के माध्यम से मनोरंजन करना सर्वथा अशास्त्रीय है।' हारमोनियम पर भजन बोलना, कविता करना, चुटकुले सुनाना आदि सर्वथा अनुचित है। इस व्यवस्था का उल्लंघन होने से शास्त्रीय विधि गौण होकर मनोरंजन की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है और यज्ञ की गरिमा को आघात पहुँचता है। यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म न रहकर मनोरंजन का रूप ले लेता है। यज्ञ की समाप्ति पर अच्छे स्तर पर (जो यज्ञ के अनुरूप हों) भजन और व्याख्यान कराए जा सकते हैं।

पूर्णाहुति- पूर्णाहुति करने का अधिकार यजमान को होता है और यजमान वह कहलाता है जो ऋत्विग्वरण करता है और अग्न्याधान से लेकर अन्त तक यज्ञ-कर्म में प्रवृत्त होता है। इसलिए अग्न्याधानक्रियारहित व्यक्ति को पूर्णाहुति का अधिकार नहीं है। जिसने आरम्भ नहीं किया वह अन्त या समापन कैसे कर सकता है? प्राय: पूर्णाहुति के समय यज्ञविधान के सभी नियमों को ताक में रखकर लागों को बुला-बुलाकर आहुति डालने के नाम पर सामग्री फिंकवाना यज्ञ का उपहास करना है। न ऋत्विग्वरण किया, न विधिवत् यज्ञोपवीत धारण किया, न आचमनादि किया-यहाँ तक कि जूते खोलकर हाथ-पैर भी न धोये और हाथ बढ़ा सामग्री लेकर यज्ञकुण्ड की ओर फेंक दी । तीन-तीन मिनट में यजमान बदलते रहते हैं- आते जाओ, चलते जाओ। ब्रह्मा या पुरोहित यज्ञोपवीत डलवा ही देते हैं तो तथाकथित यजमान आसन से उठते ही गले से निकालकर गली या सड़क में फेंक देते हैं। जो काम औरगजेब तलवार के ज़ोर से न करवा सका था, वही हम आज स्वेच्छापूर्वक हँसते-खेलते कर रहे हैं- अन्त में पंक्तिबद्ध होकर ब्रह्मा के पैर छूते जाने और चढ़ावा चढ़ाते जाने अथवा दक्षिणा (उससे अतिरिक्त जो ब्रह्मा जी आर्यसमाज के अधिकारियों से प्राय: ठोक-बजाकर पहले नियत कर चुके होते है) देने का प्रदर्शन होता है। जैसे पौराणिक लोग मूर्ति पर दो फूल चढ़ाने को मोक्षलाभ का पासपोर्ट समझते है, वैसे ही आर्यसमाजी हवनकुण्ड में दो चुटकी सामग्री डालने को 'स्वर्ग का टिकट मिल गया' समझने लगे हैं। वस्तुत: इस सबके मूल में अधिकारियों तथा ऋत्विजों की लोभ की वृत्ति है। ऐसे यज्ञों से विशेष लाभ की आशा नहीं की जा सकती, क्योंकि-

य: शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारत: ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥ गीता 16/23

दीप्ति, से साभार

नूतन निष्काम पत्रिका वर्ष-४ अंक-५ मुम्बई मई- २०१३ पृष्ठ-०१६ मूल्य- रु. १/-
चैत्र २०७० (मई २०१३) Post Date : 25-4-2012 MH/MR/N/136/MBI/-10-12
MAHRIL 0( )07/13/1/2009-TC पोष्ट आफिस : सांताक्रुज़ (प.)
आर्य समाज सान्ताक्रुज मुम्बई का मुखपत्र
संपादक : संगीत आर्य
मुद्रक एवं प्रकाशक : चन्द्रपाल गुप्त द्वारा कृष्ण प्रिंटींग प्रेस, २६, मंगलदास रोड, मुंबई-२. से मुद्रित कराकर आर्य समाज भवन, वी. पी. रोड, (लिंकिंग रोड़), सान्ताक्रुज़ (प.) मुंबई-४०० ०५४. से प्रकाशित किया। दूरभाष : २६६० २८००/२६६०२०७५/२२९३१५१८

प्रति,

१८०८

'रक्त' का रंग नहीं बदला अर्थ बदल गया

आनन्द गहलोत

संस्कृत का 'शोण', शोणित' ईरान में किन परिवर्तन-नियमों के अंतर्गत 'खून' में बदल गया? क्या 'रक्त', 'रुधिर', 'लोहित' का यही अर्थ था, जो आज है? यूरोपीय भाषाओं के 'ब्लड' का ब्लड ग्रुप क्या है?

मनुष्य के रक्त का रंग सृष्टि के आदि से अब तक लाल रहा है; लेकिन ऐसा भी समय था कि इस शब्द का 'खून' अर्थ नहीं था, अर्थ था 'रंगा हुआ'। आज भारतीय भाषाओं में इसका अर्थ है 'खून', 'ब्लड'।

ब्राह्मण ग्रंथ' प्रमाण हैं कि 'रंज्' धातु से बने 'रक्त' का अर्थ था 'रजित' (रंगा हुआ)। रक्त का मूल न जानने के कारण हिंदी शब्द बना रक्तरंजित (खून से रंगा हुआ)।

रंगा हुआ तो किसी भी रंग से हो सकता है; लेकिन संस्कृत भाषा बोलने वालों की दूसरी पीढ़ी ने 'रक्त' का अर्थ कर दिया 'लाल'। रक्त वर्ण का मतलब हुआ लालरंग तीसरी पीढ़ी ने 'रक्त' का अर्थ 'अनुरक्त' आसक्त प्रेमी भी कर दिया। उसी पीढ़ी ने 'विरक्त' शब्द गढ़ा वैराग्य के अर्थ में।

आज 'रुधिर' का अर्थ सिर्फ 'बल्ड', 'खून' रह गया है; लेकिन अथर्ववेद (5-29-10) में यह शब्द 'लाल' अर्थ में इस्तेमाल हुआ है।

इसी तरह 'लोहित' शोणित', शब्दों का जिनका भारतीय भाषाओं में 'खून' अर्थ है, कभी 'लाल' अर्थ था। शरीर का सारा दम, सारी शक्ति 'खून' में ही है। फारसी के 'दम' शब्द का अर्थ भी 'खून' था, लेकिन उर्दू हिंदी में आते 'दमदार' जैसे शब्दों का अर्थ 'जीवशक्ति सम्पन्न', 'मज़बूत' रह गया। 'दम' से दम फूलना, दम लेना, सांस-संबंधी, विश्राम-संबंधी अर्थ विकसित हुए। साथ ही 'दम मारो दम' अर्थवाला दम भी।

संस्कृत 'लोह' से यद्यपि हिंदी-उर्दू ने 'लोहा' शब्द गढ़ा; लेकिन 'लोह' का एक अर्थ था 'खून'। 'लहू' शब्द इसी का वंशज है। मेरे विचार से 'लोहित' से 'लहू' बनने में ज़्यादा देर नहीं लगी होगी।

संस्कृत 'शोण' 'शोणित' का रक्त भारतीय शब्दों में इतना नहीं बहा; जितना ईरानी शब्द में। फारसी के 'खून' की नसों में 'शोण' का 'खून' है। 'श' 'ख' में बदला जैसे स्वप् से भारत में जन्मा 'स्वप्न' और ईरान में 'ख्वाब' ने जन्म लिया।

रक्त, रुधिर, 'लहू' का अर्थ भले ही 'बल्ड' हो गया, लेकिन 'बध, हत्या, 'कत्ल' उस रुप में विकसित नहीं हुआ; जैसे फ़ारसी-हिंदी-उर्दूके 'खून' के सून शब्द के सर पर नये मुहावरों का जन्म देने का खून सवार हो गया। इस शब्द का 'खून' खौलने और उबलने लगा। 'लहू' तो केवल लहू लुहान होकर ही रह गया; लेकिन 'खून' खून खराबे पर उतर आया। उसने उम्मीदों का भी खून कर दिया। 'खून' ने 'खूंख्वार' जैसे शब्दों को जन्म दिया।

दूसरी ओर वंश, खानदान सभी खून के रिश्तों में बंधे हुए हैं। 'यह मेरा खून हैं' - जैसे वह यह कहता है; उसके हित में खून बहाने से नहीं हिचकता।

युरोपीय भाषाओं का 'रेड' और मिलते-जुलते शब्द 'रुधिर' का रूपान्तर हैं। 'रेड' में आज भी 'रुधिर' के मूल अर्थ 'लाल' का रंग नहीं बदला। यूरोप में लाल रंगवाची 'रेड' शब्द के उच्चारण में हर देश में थोड़ा बहुत अंतर होता रहा; जैसे स्वीडिश का 'रॉड', डच 'रूड'। फ्रेंच शब्द 'रूज' (गालों पर लगाने का लाल-गुलाबी रंग का सौंदर्य प्रसाधन) में भी यूरोप और भारत के अपने उस पूर्वज शब्द की लाली है, जिससे 'रुधिर' शब्द भारत में बना; लेकिन वह मूल धातुशायद अब लुप्त हो गयी है। लगता है कि 'रोहित' शब्द भी उसी धातु से बना जो बाद में 'र' में बदल कर 'लोहित' हो गया। 'ईरान' की अवेस्ता भाषा का 'रोहित' इस प्रमाण की सबसे मज़बूत कड़ी है।

भाषाविदों, शब्द वैज्ञानिकों के लिए सबसे बड़ी चुनौती है कि यूरोपीय भाषा ओंके 'ब्लड' शब्द के ब्लड ग्रुप का पक्का पता नहीं चल पा रहा है।

कुछ का मत है कि 'रेड' का 'र' 'ल' में बदला और बना 'लड'। बाद में 'लड' 'ब्लड' कैसे हो गया, इसकी कड़ी ढूंढी जा रही है।

सफर शब्दों का से साभार